श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास १०

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिन्दी अनुवाद :- सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

-: दस पच्चक्खाण :-

पाप से पीछे हटने...तन मन को संयम में लाने के लिये... कर्म की निर्जरा करने....विविध प्रकार के तप शास्त्रकार महर्षिओ ने बताये है । तप करने के लिये मनोबल और आत्मबल को दृढ करने की आवश्यकता है । इस मनोबल और आत्मबल की वृद्धि के लिये पच्चक्खाण अति आवश्यक हैं । पच्चक्खाण बिना का तप फलदायी नहीं । अतिअल्प फल की प्राप्ति होती है, इसलिये तप के साथ पच्चक्खाण अनिवार्य है ।

पच्चक्खाण अनेक प्रकार के हैं, उसमें दस मुख्य है । हम यहाँ दस पच्चक्खाण और उसके स्वरुप को समझने का सफल प्रयत्न करेंगे ।

१. नमुक्कार सहिअं का पच्चक्खान

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे नमुक्कार सहिअं पच्चक्खाइ. चउव्विहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणा भोगेणं सहसागारेणं वोसिरइ.

२. पोरिसी साड्ढपोरिसी पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे पोरिसिं साड्ढपोरिसिं पच्चक्खाइ. चउव्विहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पच्चन्नकालेणं दिसामोहेणं साहुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ.

३. पुरिमड्ढ का पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे पुरिमड्ढं पच्चखाइ, चउव्विहंपि आहारं; असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरइ.

४. एकासणा का पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं, पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, पुरिमड्ढं, पच्चक्खाइ, चउव्विहंपिआहारं; असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकासणं, पच्चक्खाई, तिविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, आऊंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणिआगारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलवेण वा, ससित्थेण वा असित्थेण वा, वोसिरई.

५. एकालठाणा का पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं, पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, पुरिमड्ढं, पच्चक्खाइ, चउव्विहंपिआहारं; असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकलठाणं, पच्चक्खाई, तिविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, आऊंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणिआगारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा असित्थेण वा, वोसिरई.

६. विगई निविगई का पच्चक्खाण

विगईओ निविगईअ पच्चक्खाइ, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं लेवालेवेणं गिहत्थसंसटठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, पारिट्ठावणिआगारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, (उष्ण पाणी पीनेवालोने ''पाणस्स लेवेण वा.'' आदी छः आगार कहेना), वोसिरई.

६. निविगई (नीवी) के अेकासण का आगार सहित

उपर कि तरह पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं, पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, पुरिमड्ढं, पच्चक्खाई, चउव्विहंपि आहारं ; असणं, पाणं, खाईमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, निविगई अेकासण, पच्चक्खाई. तिविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसटठेण, उक्खित्तविविगेणें, पडुच्चमक्खिअेणं, सागारिआगारेणं, आउंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणिआगारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेणं वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा असित्थेणवा, वोसिरई.

७. आयंबिल का एकासण का आगार सहित पच्चक्खाण.

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं, पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, पुरिमड्ढं, पच्चक्खाई, चउव्विहंपि आहारं ; असणं, पाणं, खाईमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं,आयंबिलं एकासणं पच्चक्खाई. तिविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसटठेण, उक्खित्तविविगेणें, सागारिआगारेणं, आउंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणिआगारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेणं वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा असित्थेणवा, वोसिरई.

८. चउविहार उपवास का पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खाई. चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पारिट्ठावणिआगारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं वोसिरई.

८. तिविहार उपवास का पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खाई. तिविहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पारिट्ठावणिआगारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं पाणहार, नमुक्कारसहिअं, पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, पुरिमड्ढं, पच्चक्खाई, चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेण, पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलेवेण वा, ससित्थेण वा, असित्थेण वा वोसिरई.

८. चउत्थ-छट्ठ-अट्ठमभत्तादिक का पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे १ चउत्थभत्तं अभत्तट्ठं, पच्चक्खाई, सूरे उग्गए, २ छट्ठभत्तं अभत्तट्ठं, पच्चक्खाई, सूरे उग्गए ३ अट्ठमभत्तं अभत्तट्ठं पच्चक्खाई, सूरे उग्गए ४ दसमभत्तं अभत्तट्ठं पच्चक्खाई, सूरे उग्गए ५ बारसभत्तं अभत्तट्ठं पच्चक्खाई इत्यादि प्रकार के आगार सहित कहना।

९. रात्रि के चौविहार पच्चक्खाण

दिवसचरिमं, पच्चक्खाई. चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साईमं, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं,महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, वोसिरई

१०. गंठसहियादि अभिग्रहो का पच्चक्खाण

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे गंठसहिअं मुट्ठिसहिअं, पच्चक्खाई. चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाईमं, साईमं, अन्नत्थणा भोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, वोसिरई.

पच्चक्खाणो की समझ

सूरे उग्गए / उग्गए सूरे सूर्योदय से लेकर दो घडी प्रमाण याने रात्रि भोजन के दोष निवारण के लिये दो घडी के पश्चात नमुक्कार सहिअं / नवकार सहित अर्थात नवकार बोल कर पारे वहाँ तक पच्चक्खाई / पच्चखाण है (अर्थात कि नियम है)

पच्चखाण किसका करते है ? चउविहंपि आहारं / चारो प्रकार के आहार का उन चार प्रकार के आहार के

नाम इस प्रकार है - १) असणं - अशन याने मिठाई, भात, दाल इत्यादि २) पाणं - पानी / जल ३) खाइमं - पिस्ता, बदाम आदि खादिम ४) साइमं - धना दाल, सौंफ, इलायची इत्यादि स्वादिम ।

ये चारों प्रकार के आहार का ''अन्नत्थणा भोगेणं, सहसागारेणं'' इन दो आगार की जयणा रखकर वोसिरइ / वोसिराना ।

पोरसी पच्चखाण में सूर्योदय से दिन का एक चतुर्थांश भाग जाये तब तक ; पुरिमुड्ढ पच्चखाण में दिन का आधा भाग जाये तब तक; अवड्ढ पच्चखाण में दिन का पौना भाग जाये तब तक, इस तरह चतुर्विध आहार को त्याग करने के पच्चखाण किये जाते है ।

ये सभी पच्चक्खाण विधिपूर्वक नवकार गिन कर पारने के है ।

(इन पच्चक्खानो में आये आगार बियासन, एकासना, एकलठाना, नीवी, विगई, नीविगई, आयंबिल, उपवास, गंठ्ठिसहियं, मुठ्ठिसहियं और दिवस चरिमं इत्यादि पच्चखाणो में आते आगारों के अर्थ आगे दिये गये पंद्रह आगारों के अर्थ विवेचन में जानना ।)

हर एक पच्चक्खाण के अर्थ अलग अलग नहीं दिये गये है । पच्चखानो में जो जो आगार आते है, उन उन आगारों की जयणा रखकर पच्चक्खाण किये जाते है । इससे उन उन आगारों के अनुसार कदाचित हो जाये तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता । बियासना आदि से उपवास तक के तप में अचित्त पानी और बियासना आदि आयंबिल तक के पच्चक्खाणों में अचित्त पानी की तरह भोजन भी अचित्त लिया जाता है । उनमें सचित्त भोजन (खुराक नहीं खाया जाता तथा सचित्त पानी भी नहीं पिया जाता ।)

ब्यासना - दो वखत बैठ कर असणं / भोजन करें वह ब्यासना कहलाता, यह तप नमुक्कार सहियं पच्चक्खाण से भी हो सकता है ।

एकासना - एक ही वखत एक आसन पर बैठ कर असणं / भोजन करें वह एकासना कहलाता है । यह तप कम से कम पोरिसी पच्चक्खाण से हो सकता है ।

एकलठाणा - यह तप एकासने की तरह ही किया जाता है, पर इसमें भोजन करते समय हाथ पैर आदि अवयवों को संकोचना फैलाना नहीं, सिर्फ भोजन करने के लिये एक हाथ और मुख दो ही चला सकते हैं ।

नीवी - यह तप एकासने की तरह ही जानना । परंतु इसमें मक्खन निकाली गई छाश (मही) और आयंबिल में वापरने की वस्तुओं के सिवाय अन्य नहीं वापर सकते ।

आयंबिल - यह तप एकासने की तरह ही जानना । परंतु इसमें विगईयाँ नहीं वापर सकते । फक्त पानी से पका हुआ अनाज एक वखत वापर सकते हैं । (वर्तमान में नमक, कालीमिर्च, हींग वापरने की प्रथा है ।)

उपवास - चौविहार उपवास में चारों प्रकार के आहार में से कुछ भी वापर नहीं सकते, तिविहार उपवास में तीन उबाल आ जाए, ऐसा उबाला हुआ पानी पोरिसी पच्चक्खाण के पश्चात वापर सकते हैं ।

पच्चक्खाणो के पंद्रह आगारों के नाम (अर्थ सहित)

१. अन्नत्थणा भोगेणं - अन्यत्राना भोगात् अर्थात भूलने से - तो यहाँ पच्चक्खान का उपयोग भूलने से अनजानपने से अनुपयोग से कोई वस्तु मुँह में डालने से पच्चक्खान भंग नहीं होता, परंतु बीच में पच्चक्खान याद आये तो उस समय तुरंत मुख से त्याग करे अथवा थूक डाले तो पच्चक्खान भंग नहीं होता । अथवा तो

अनजानपने में गले से नीचे उतरने के बाद थोडी देर के बाद याद आए अथवा तुरंत याद आये तो पच्चक्खान का भंग नहीं होता। पर शुद्ध व्यवहार के लिये निशंक नहीं होता, इससे यथायोग्य प्रायश्चित लेना। (इस तरह सभी आगारों के बारे में जान लेना)

२. सहस्सागारेणं - जो पच्चक्खाण किया है, उसका उपयोग तो भूले नहीं, परंतु कार्य करते समय स्वाभाविक ही मुख में चला जाये। जैसी दही बिलोते समय उसका छींटा उडकर मुख में पडे अथवा चौविहार उपवास में बरसात में बारिश की बुंद पडे उससे पच्चक्खान का भंग नहीं होता।

३. पच्छन्न कालेणं - काल की पच्छन्नता वह मेघ आदि, ग्रह आदि, दिग्दाह, रजोवृष्टि, पर्वत और बादल से सूर्य का ढँक जाना, इससे समय का बराबर ख्याल न आने पर अनजाने में अधुरी पोरिसी में ही पोरिसी पूर्ण हुई ऐसा मान कर पच्चखाण पारने में आये तो पच्चक्खान का भंग नहीं होता। कदाचित इस तरह अधुरी पोरिसी में ही भोजन के लिये बैठ गये और उसी समय धूप दिखे और पता चले कि अभी तो सबेरा ही है, पोरिसी का समय पूर्ण नहीं हुआ, तो उस समय मुँह में डाला हुआ हो तो राख में परठ कर वहीं बैठा रहे और यावत् पोरिसी पूर्ण होने के पश्चात भोजन करे तो पच्चक्खान भंग नहीं होता।

४. दिशा मोहेणं - दिशा विपर्यास होने से पूर्व को पश्चिम और पश्चिम को पूर्व कर जाने, इस तरह अनजाने में पच्चक्खाण जल्दी पारा जाय तो उसका भंग नहीं होता। थोडा भोजन करने के पश्चात किसी के कहने पर मुंह में डाला कवल थूंक डाले। इस तरह दिशा का मोह टलने के पश्चात अर्ध भोजन कर बैठा रहे तो पच्चक्खाण भंग नहीं होता।

५. साहू - वयणेणं - उघाडा पोरिसी ऐसा साधु का वचन सुनकर पोरिसी आ गई ऐसा समझ कर पच्चक्खाण पारे तो पच्चक्खान भंग नहीं होता। पश्चात जब जानने में आये की साधु तो छः घडी होने पर पोरिसी पढते हैं तब पहेले की तरह बैठा रहे तो पच्चक्खान भंग नहीं होता।

६. लेवा - लेवेणं - लेप अलेप वह धृत इत्यादि जिस विगई का त्याग साधु को हो ऐसी विगई से गृहस्थ का लिप्त हाथ पोंछ डाला हो ऐसे हाथ से अथवा ऐसी विगई से लिप्त चम्मच पोंछ कर उससे वहोरावे अथवा परोसे तो पच्चक्खाण भंग नहीं होता है।

७. गिहत्थ संसटठेणं : गृहस्थ के वाटके इत्यादि पात्र विगई से सने हुए हो और उससे अन्न दे तो विगई से सना हुआ अन्न खाये तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता।

८. उक्खित विवेगेणं - गुड, पकवान इत्यादि विगई के टुकडे रोटी इत्यादि पर डाले हुए हो और वह उठा कर दूर करे तो ऐसी रोटी इत्यादि लेने से पच्चक्खाण भंग नहीं होता।

९. पडुच्च-मक्खिअेणं : रोटी इत्यादि को नरम रखने के लिये मोयन डाला हो अथवा हाथ चुपड कर बनाई हो तो वह रोटी इत्यादि लेने से पच्चखाण भंग नहीं होता।

१०. सागारि - आगारेणं : साधु आहार करने बैठे हो और वहाँ गृहस्थ आये और फिर वह चला जाये, तो एक क्षण सबूर करे और बैठा रहे। पर अगर गृहस्थ वहाँ खडा ही रहे और उसकी नजर पडे तो साधु वहाँ से उठकर दूसरे स्थान पर आहार ले। गृहस्थ के देखते आहार करे तो प्रवचनोपघातादिक महादोष लगता है ऐसा सिद्धान्त में कहा है और इस बारे में गृहस्थ के लिये भी ऐसा उल्लेख है कि गृहस्थ एकासना करने बैठने के

पश्चात जिसकी दृष्टि पडने पर अन्न पचे नहीं ऐसे पुरुष की दृष्टि पडे अथवा साँप आवे, चोर आवे, कैदी आकर खडा रहे, अचानक आग लगे, घर गिरने लगे, पानी की बाढ आये , ऐसे कारणों से स्वयं की जगह से उठकर दूसरी जगह जाकर एकासना करे तो पच्चखाण का भंग नहीं होता ।

११. आउंटण - पसारेणं - जिमने बैठने के पश्चात हाथ,पैर आदि अंगोपांग पसारते या संकुचन करते आसन चलायमान हो तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

१२. गुरु अब्भुट्ठाणेणं - पच्चक्खाण लेकर आहार के लिये बैठे फिर गुरुभगवंत (आचार्य, उपाध्याय, साधु) आवे तो उनका विनय रखने के लिये दोनों पैर ठाम रखकर उठना, इससे पच्चक्खान का भंग नहीं होता ।

१३. पारिट्ठावणियागारेणं - विधिवत ग्रहण किया हुआ याने विधिपूर्वक वहोर कर लाया हुआ हो और अन्य मुनिओं ने विधिपूर्वक वापरते वह भोजन किंचित बचा हो तो वह पारिठ्ठवणीय याने परठने योग्य (सर्वथा त्यागने योग्य) गिना जाता है, वह बचा हुआ भोजन परठने से जीव विराधना आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, ऐसा जानकर गुरु महाराज उपवास तथा ऐकासनादि पच्चक्खान वाले मुनि को एकासनादि कर लेने के बाद भी वापरने की आज्ञा करे तो वह मुनि पुनः आहार वापरे तो उपवास तथा एकासनादि पच्च. का भंग नहीं होता । इस कारण से यह आगार रखने में आता है । (पर इतना विशेष जानना कि चोविहार उपवास में पानी का पारिठ्ठावणिआगारेणं होता है और तिविहार उपवास में अन्नादि का पारिठ्ठावणिआगरेणं होता है, यह आगार सिर्फ मुनिओं को ही होता है । पच्चक्खान का आलावा तूटे नहीं इस लिये गृहस्थ के पच्चक्खान में यह पाठ संलग्न कहने में दोष नहीं ।

१४. महत्तरागारेणं - पच्चखाण में कर्मनिर्जरा का लाभ होता है, उसकी पेक्षा भी अत्यंत बडा निर्जरा का लाभ जिस कार्य में होता है अर्थात ग्लानमुनि, प्रासाद संघ अथवा देव की वैयावच्च के लिये, दूसरे अन्य व्यक्ति से वह कार्य न हो सकता हो तो उस समय गुरु अथवा संघ के आदेश, आज्ञा से समय पूर्ण हुए बिना ही जो पच्चखान पारने में आये तो पच्चखान का भंग नहीं होता ।

१५. सव्व-समाहिवत्तिआगारेणं - सभी प्रकार से असमाधि, अस्वस्थता रहे याने पच्चखान करने के पश्चात तीव्र शूलादि रोग उत्पन्न हो अथवा सर्पादि का दंश हुआ हो तो उस वेदना से जीव आर्त में पडे, जब अकस्मात कष्ट हो तो सर्व इंद्रिय की समाधि के लिये अपूर्ण पच्चक्खाण में भी पथ्य औषधि लेना पडे तो उससे पच्चखाण भंग नहीं होता । (समाधि होने के पश्चात अगला विधि करना)

अचित्त पानी के छः आगार

भोजन के पश्चात अचित्त पानी पीने की छूट है ।

१. लेवेण वा - ''लेवेणवा'' पानी याने अन्नादि से बर्तन सने हुए हो, वह लेप कृत पानी । आचाम्ल तथा ओसामण छान कर पीये , आदि शब्द से द्राक्षादि, आम्लादि, पानकादि जानना, वह पीने से पच्चक्खान भंग नहीं होता ।

२. अलेवेणवा - अलेपकृत पानी याने कांजी, धोवण आदि शब्द से गडुलजरवाणी इत्यादी पीये, तो पच्चक्खाण भंग नहीं होता ।

३. अच्छेणवा - अच्छ, उष्ण जल, तीन उबाल वाला तथा दूसरा भी निर्मल उबाला हुआ, नितरा हुआ, फलादि का धोवण उसे छान कर पीये तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

४. बहुलेवेण वा - बहु लेप याने गडुल, चावल प्रमुख का धोवण, उसे छान कर पीये तो पच्चखाण भंग नहीं होता ।
५. ससित्थेण वा - सित्थ सहित वह अन्नादि दाने का स्वाद बिना का धोवण तथा दाथरादिक धोवण उसे छान कर पीये तो पच्चक्खान भंग नहीं होता ।
६. असित्थेवा - सित्थ रहित गीले आटे से हाथ सने हुए हो और उसका धोवण पानी छान कर पीये तो पच्चक्खान भंग नहीं होता ।

छः विगई के तीस निवियाता

भोजन करते जिससे कामादि उन्माद रुप विकार हो वह ''विगइ'' कहलाती है । ऐसी विगई सब मिलकर दश है । उसमें मांस मदिरा, मक्खन और मधु (शहद) ये चार तो अभक्ष्य ही हैं । बाकी की छः भक्ष्य विगई इस प्रकार से है १) दूध २) दही ३) धृत ४) तेल ५) गुड ६) पकवान्न ये छः प्रकार की मूल विगई हैं । इन प्रत्येक के पाँच पाँच निवियाता गिनते तीस निवियाता होते हैं ।

१. दूध के निवियाता :- १. दूध ज्यादा हो और चाँवल कम हो उसे ''पेया'' कहते हैं । २) खट्टी छाश (मही) सहित अर्थात दूध में खटाश डाल कर पकाये अथवा तीन दिन की प्रसूता गाय का दूध उबाले उसे (दुद्धठी'' (दुग्धाटी) कहते हैं । ३) द्राक्ष, खोपरा आदि डालकर पकाये गये दूध को ''पयसाडी'' कहते है । ४) चावल का थोडा आटा डालकर पकाये गये दूध को ''अवलेही '' कहते है । ५) चांवल ज्यादा और दूध थोडा, इस तरह पकाये हुए को ''खीर'' कहते हैं । (इनके और भी बहुत भेद होते हैं ।)

२. दही के निवियाता :- १. दही को मथ कर अथवा उबाल कर उसमें वडे डाले जाए उसे ''घोलवडा'' कहते हैं । २) वस्त्र से छाना हुआ दही ''घोल'' कहते हैं । ३) दही को हाथ से फेंटकर उसमें शक्कर डाली जाय उसे ''शिखरीणी अथवा शीखंड'' कहते हैं । ४) दही में भात मिलाया जाये वह ''करंब'' ५) नमक डाल कर मंथन किया हुआ दही उसे ''सलवण'' कहते हैं (भेदांतर से उसके और भी भेद होते है ।)

३. घृत (घी) के निवियाता :- पकवान तलने के बाद कडाही में बचा हुआ जला हुआ घी वह ''निर्भंजन'' तथा दही की मलाई और आटा उन दो को मिलाकर बनाया हुआ कुलेर वह ''वीस्पंदन'', औषधी (वनस्पति विशेष) डाल कर उबाले हुए घी की उपर की तरी वह ''पक्वोषधी तरीत'', घी को उबालते समय उपर जो मेल तैर कर आता है, उस मेल का नाम ''किट्टी'' और आँवले वगैरे औषधी डालकर उबाला हुआ घी वह ''पक्वघृत'' कहलाता है (इसके अलावा भेदान्तर से अन्य भेद भी होते हैं ।)

४. तेल के निवियाता :- १) पानी में तिल पीस कर बनाई हुई साडी में शक्कर आदि डाल कर बनाई हुई ''तिलकुटी'' २) तेल की मली ३) लाक्षादिद्रव्यों से पकाया हुआ तेल ४) तेल में पडे औषध की तरी ५) पकवान तलने के बाद कडाई में बचा हुआ जला हुआ तेल । (भेदांतर से और भी भेद होते है ।)

५. गुड के निवियाता :- १) अर्ध पकाया हुआ गन्ने का रस (अर्धक्वथित) २) गुड की राब, गुड के पानी में डाला हुआ आटा, गुलपानक ३) शक्कर की सभी जात ४) खांड की सभी जात ५) गुड की चासनी । (इनके भी भेदान्तर से अनेक भेद होते हैं ।)

६. पकवान्न के निवियाता :- खाजा से कडाही भर गई हो तो उससे दूसरा खाजा निवियाता होता है, पर उसमें दूसरा घी नहीं डालना चाहिये उसी में पकाये वह २) एक के बाद एक उस तरह तीन घान निकालकर उसी

घी में चौथा घान निकाले वह निवियाता ३) गुड -धानी गुडपापडी इत्यादी ४) पानी, गुड और घी मिश्र कर उबालें और उसमें दरदरा आटा डाल कर पकायी गई लापसी वह निवियाता ५) घी तेल से चुपडे हुये तवे पर बनाये गये पुडला इत्यादी। (इसके भी भेदांतर से बहुत भेद होते है।)

इन छः विगइ में से एक भी विगइ का पच्चखाण ''विगइ पच्चखाण'' कहलाता है। छ : विगइ पच्चखाण करना उसे ''निविगइअ पच्चख्खाइ'' या निवि का पच्चखाण कहलाता है। उसमें श्रावक को निवियाता लेना कल्पता नहीं। अगर सलंग तप मांडा हो तो उसमें तीन दिन के पश्चात निवियाता लेना कल्पता है। साधु को एक निवि में निवियाता लेना कल्पता है। विगइ तथा निवियाता का नियम करे और आयंबिल पच्चख्खे, तो आयंबिल में जो वस्तु कल्पे उसे छोड कर अन्य सभी वस्तु का नियम ले।

चार प्रकार का आहार

१) असणं / अशन : शाली, ज्वार, गोधूम, बंटी, मग, मठ, तुवर इत्यादि और साथवा आदि सर्व प्रकार के आटे, मोदकादि सभी प्रकार के पकवान्न, सूरणादि सभी जाति के कंद और मांडा वगैरह (रोटी, पुडला इत्यादि) वस्तु, बेसन, सौंफ, धना इत्यादि अशन कहलाता है।

२) पाणं / पानी : कांजी का पानी, जौ का पानी, खरबूज वगैरह फलों के अंदर रहा पानी, नदी इत्यादि सभी जलाशयों का पानी, उसी प्रकार शक्कर पानी द्राक्षवानी, गन्ने का रस इत्यादि पानी में आते हैं, तथापि वह व्यवहार से ''अशन'' ही कहलाता है।

३) खाइमं / खादिम :- खारेक, बदाम, शिंगोडा, खजूर, खोपरा, द्राक्ष, पिस्ता इत्यादि सर्व जाति के मेवा, काकडी, आम, फणस, नारियल इत्यादि सभी 'खादिम' कहलाते हैं।

४) साइमं / स्वादिम :- सूंठ, हरडे, पीपर, काली मिर्च, अजवान, जायफल, जावंत्री, कत्था, खसखस, जेठीमध, दालचिनी, तमालपत्र, इलायची, लविंग, सुपारी, पान, बिडलवण, कलिंजण, पीपरमूल, चिनी कबाब, कचूरो, मोथ, कपूर, काला नमक, बहेडा, आंवला, हिंगाष्टक, हींग, पूष्करमूल, जवासामूल, बावची, बबूल छाल, खिजडाछाल, धवछाल, तुलसी, जीरा (जीरे को 'पच्चखाण भाष्य' तथा 'प्रवचन सारोद्धार' में 'स्वादिम' कहा हैं। कल्पवृति में स्वादिम कहा है। अजवान को भी कितने 'खादिम' कहते है। इसके अलावा कोटपत्र, कोठवडी, आमलगंडी, लींबूपत्र, आम-गोटली इत्यादि 'स्वादिम' कहेलाते हैं।

अनाहारी पदार्थ

नीम के पाँच अंग (मूल, छिलका, पत्ते,फूल, फल) गौमूत्र, गुडवेल, कडु चिरायता, अतिविष, चंदन, राख, हल्दी, रोहिणी, उपलेट, वज, त्रिफला, घमासो, नाहि, आसंधि, रिंगणी, एडिआ, गुगल, बोइडी, कंथरीमूल, केरडामूल, पूंआड, मजीठ, बोलबीओ, कुंआरी, चित्रक, कुंदरु, फिटकरी, तमाकु, आदि अनिष्ट स्वादवाली वस्तुएं तथा स्वाद बिना रोगादि के कारण से चतुर्विध आहार कल्पता है। अफीम इत्यादि के बारे में वही समझना, याने कि जो खाने से जीव को अरुचि उत्पन्न हो वह सभी अनाहारी है।

श्रावक किसे कहें ?

(श्रावक के २१ गुण)

१९. कृतज्ञ

बहुमन्नई धम्म गुरुं,
परमुवयारि त्ति तत्तबुद्धिअे,
तत्तो गुणाण वुढी,
गुणारिहो तेणिह कयन्नू २६

कृतज्ञ पुरुष धर्मगुरु आदि को सच्ची बुद्धिसे परमोपकारी जानकर उनका बहुमान करता है। उससे गुणों की वृद्धि होती है। अतः कृतज्ञ ही सब गुणों के लिये योग्य है। ...२६

धर्म जिसे करना है, धर्म आचरण कर पुराने पापों को धोकर जबरदस्त पुण्योदय प्राप्त करना है, ऐसे जीवों के लिये ''धर्मरत्न प्रकरण' में सुंदर बात बतायी है। धर्मरुपी रत्न को खरीदने के लिये जीवन में गुणों की आवश्यकता बताई है।

जीवन में कृतज्ञता हो तो धर्मगुरु आदि परम उपकारी लगते है, उनके लिये बहुमान जागृत होता है, गुणों का भंडार छलक जाता है।

अपने खुद में कृतज्ञता है या नहीं यह जानने के लिये अपनी जाँच करें, आत्म निरीक्षण करें, खुद को सवाल पूछें, '' क्या देव-गुरु, माता-पिता आदि परम उपकारी है ऐसा मुझे लगता है क्या ? उनके प्रति, हृदय में, वाणी में, वर्तन में, बहुमान है ? और ''क्या मेरा जीवन विविध गुणों से छलक रहा है ? ''

खेद पूर्वक कहना पडेगा की वर्तमान समय में हम सब इस अति महत्व के गुण को प्राप्त करने में सदंतर निष्फल रहे है। धर्मस्थानों में देवगुरु के प्रति और घरमें माता-पितादि बडों के प्रति हम बेदरकार बन गये है। उन उपकारियों के उपकारों का हमे विस्मरण हो गया है। उनके महान उपकार हम भूल गये है।

जिस माताने हमारे लिये रातों की रातों जागरण किया, अपने पेटपर पट्टे बांधकर हमारी सब इच्छाऐं पुरी की, हमारी सब सुविधाऐं पूरी की, जिस पिता ने हमारे जीवन को सुंदर बनाने के लिये दिन-रात देखे बिना मेहनत की है, लिखा पढाकर धंधा जमा दिया, ऐसे उपकारी माता-पिता के उपकारों का बदला चुकाना शक्य ही नहीं है। ऐसे उपकारीयों को अंत में आराम शांति और समाधि देंने के बजाय उनकी पराधीन और लाचार अवस्था में उन्हे क्लेश, उद्वेग, अशांति और असमाधि देने में निमित्त बनते है, तब उन जीवों पर दया, करुणा और कभी तिरस्कार की भावना उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती।

उपकार और उपकारी को नजर में रखकर उसकी चुतर्भंगी हो सकती है। १) कई जीव अपने महाउपकारियों के उपकार भूलकर उनके उपर अपकार करनेवाले होते है, ऐसे जीव अधमाधम की कक्षा में आते है। २) कई जीव अपने उपर अपकार करनेवालों पर अपकार करनेवाले होते है। ऐसे जीव जीवन में क्षमा का स्वीकार नहीं कर सकते। इंट का जवाब पत्थरसे देने में माननेवाले होते है।उनका समावेश अधम कक्षा में होता है। ३) तीसरे प्रकार के जीव मध्यम कोटि के होते है। अपने उपकारी को जाननेवाले, पहचानने वाले और उनके उपकारों को सदैव स्मृति में रखनेवाले होते है। ऐसे जीवों को जब भी मौका मिले तो वे उपकार करनेवालों के उपर उपकार करने के लिए सदा तत्पर होते है। ४) उपर बताये हुए तीनो प्रकार के जीवों से श्रेष्ठ ऐसे जीव भी

होते है, जो उपकारी और परिचित-अपरिचित व्यक्तियोंके उपर तो उपकार करते ही है, परंतु खुदको हेरान-परेशान करनेवालों के उपर भी प्यार बरसाने वाले होते है। अपकारी और खुद के गुनहगार हो ऐसी व्यक्तियोंके प्रति भी द्वेष या वैर की भावना नहीं होती। उनके उपर भी उपकार करने के लिए सदैव तत्पर रहते है।

सांप दूध पिलानेवाले को भी जहर देता है....

गाय घास खाकर भी दूध देती है......

बादल खारा पानी पीकर मीठा जल बरसाते है..

हमारा नंबर कहाँ लगता है ?

समाज और देश के चारों ओर बढती जा रही होटले, हॉस्पीटल, होस्टेल, वृद्धाश्रम, पांजरापोळ क्या सूचित कर रहे है ? एक दुजे के लिये कुछ कर छुटने की भावना, सेवाकी भावना, और प्यार-भावना-परोपकार इन सबका हमारे जीवन में दिवाला निकला है, युवान गुरुजनोंका उपकार भूल गये है।

निरोगी लोग बिमारों की सेवा भूल गये है...

पारिवारिक संबंद कलुषित बने है.....

एक दूसरे के लिये सन्मान और बहुमान की भावना से दूर चले गये है, केवल हार-तोरे पहेना देने से, शाल ओढाने से अथवा नरियल पकडाके तिलक कर देने से बहुमान हो जाता है, यह हमारी कोरी कल्पाना है, भूलभरी मान्यता है।

नदी किनारे खडे एक युवान की नजर एक संत पर पडी। संत पानी में गिरे बिच्छू को बचाने हाथ में लेता है। संत को बिच्छू डंख मारकर पानी में गिरता है, संत पानी में हाथ डाल उसे पुनः निकालते है। बिच्छू पुनः हाथ में डंख मारकर गिरता है। संत फिरसे उसे बचाकर बाहर निकालते है। ऐसा क्रम बहुत देर तक चलता रहा। अंत में युवान की धीरज खत्म हुई, वह संत के पास गया और कहा, '' बारबार तुम्हे डंख मारनेवाले इस बिच्छू को बचाना योग्य नहीं, उसे तो मरने देना चाहिये। आप उसे क्यों बचा रहे हो ?'' संत ने कहा ''बेटा ! जिसका जैसा स्वभाव हो वह वैसा ही बर्ताव करनेवाला है,यदि बिच्छू अपना डंख मारने का स्वभाव छोडने को तैयार न हो तो संत होकर उसे बचाने का मेरा स्वभाव कैसे छोडूं ?''

युवान विस्मित होकर संत के चरणों में झुक गया। मानव का जन्म, अनंत उपकारी अरिहंत का शासन और श्रावक का कुल पाने के बाद उपकारियों के उपकार को कैसे भूलें ? उनकी अवज्ञा, आशातना, अवहेलना कैसे हो ? उनका तिरस्कार तो किया ही कैसा जाय ? उपकारियों के उपकार का स्मरणही हमारे हृदय में उन सब के लिये बहुमान की भावना जगायेगा। हमें अपने कर्तव्य के प्रति जागृत करेगा, प्रति उपकार के लिए सावधान करेगा। जीवन के बाग को गुणों से सुवासित बनायेगा।

भूले वहाँ से वापिस आयें.....

कृतघ्नता को दूर हटायें....

कृतज्ञता के स्वामी बनें ....

स्व-पर का कल्याण करनेवाले बनें.....

सब के जीवन में सुखशांति भरपूर बनायें ....

२०. परहितार्थकारी

श्रावक का जीवन उसके गुणोंका बाग है। बाग में जैसे पुष्प होगें वैसी सुगंध वहाँसे जाने वाले होनेवाले को मिलेगी।वैसे ही श्रावक के जीवन में जैसे गुण होगें उसकी वैसी ही सुवास उनके सान्निध्य में मिलेगी, संग में आनेवाले को मिलेगी ही।

श्रावक के गुण उद्यान का अवलोकन करते हुए हम आगे बढें -

परहिय निरओ धन्नो,
सम्मं विन्नाय धम्म सब्भावो
अन्नेवि टवई मग्गे,
निरीहवित्तो महासत्तो २७

परहित साधने में तैयार रहनेवाला पुरुष धन्य है, क्योंकि वे धर्म के सही मतलब को सही तरीके से समझने वाले होने से निःस्पृह महा सत्ववान होकर अन्यों को भी मार्ग में स्थिर करते हैं।

श्रावक के इस निराले गुण की बात समझाते हुए कहते है - ''श्रावक परहित करनेवाला, परोपकार करनेवाला होता है।''

खुद का हित तो कौवे और कबूतर भी साध लेते है, कुत्ते और बिल्ली भी साधते है, इसमे क्या महानता है ? महानता तो खुद के सुखको गौण बनाकर दूसरे के सुख को मुख्य बनाने में है। दुसरे के सुख में तत्पर रहने वाले अपने जीवन में आने वाले दुःखों को झेलने में भी तत्पर रहते हैं। ऐसे जीवों को धन्य कहा है। परहित में प्रवृत्त रहनेवाले ही धर्म के सही मर्म को समझते है। धर्म को न समझने वाला कभी भी परोपकार के पुण्यवंती प्रवृत्ति में आगे बढ नहीं सकता। परोपकारी परहितकारी श्रावक ही निस्पृही होता है। अपने स्वार्थ का त्याग करने के लिये सत्व प्रकटाता है। ऐसे श्रावकों का जीवन देखकर दुसरों का भी उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। अतः परहित करनेवाला स्व-पर कल्याण करनेवाला होता है।

यही भावना भाते हुए हम रोज कहते है -

शिवमस्तु सर्व जगतः परहित निरता भवन्तु भूतगुणा।

संपूर्ण जगत शिव-मंगलमय हो, सब जीव दूसरे के हित में प्रवृत्त बने।

हम हमारे खुद के जीवन का निरीक्षण करें। मेरे जीवन में परहित की प्रवृत्ति कितनी ? दुसरे के लिये कुछ करने की भावना कितनी ? अपना कार्य छोड दुसरे के लिये दौड कितनी ? आज के हमारे सुखी जीवन के पीछे बहुतों का योगदान है। बहुतों का उपकार है।

खेत के एक कोने में गड्डा खोदनेवाले दादाजी को एक युवान ने पूछा ''क्यों दादाजी क्या कर रहे हो ?''

दादाजी ने जवाब में कहा - बेटा, आम बो रहा हूँ।'' दादाजी का जवाब सुनकर युवान खिलखिलाकर हंस पडा। और बोला '' दादाजी, इस उमर में तुम्हें लगता है, क्या ये बोये हुए आम तुम्हें खाने को मिलेंगे ? ''

दादाजी अत्यंत गंभीर हो गये और युवान को कहा ''बेटा, पुरी जींदगी किसीके बोये हुए आम बडे टेस्ट से खाये है , अब लगा जाने के दिन आये है तो किसी के लिये तो भी आम बोते जाऊं।'' आम खाने की इच्छा से आम बो नहीं रहा पर बहुतों के ऋण के नीचे दबा हूँ। उनके ऋण में से यत्किंचित मुक्त होने के लिये आम बो रहा हूँ।''

दादाजी का जवाब सुनकर युवान स्तब्ध रह गया। युवान शरमा गया। दादा की मश्करी करनेवाले की खुद की हालत बुरी हो गयी। कहाँ दादाजी के विचार करने की शक्ति और कहाँ हमारी पामरता ? हमारे जीवन में से परोपकारी वृत्ति ने विदा ली है। परोपकार को समझने में भी हम कम उतरे हैं।

आठ प्रकारके अंधो में एक ''स्वार्थान्ध'' कहा गया है। मानव जब स्वार्थी बनता है, तब सारासार का विवेक खो बैठता है। अंधे के समान गिरते पडते हैं। पर सही मार्ग देख, जान नहीं सकते। जब हम स्वार्थांध मिट जायेंगे, तब हम में परहित की प्रवृत्ति खिल उठेंगी। कुदरत की ओर नजर करने पर दिखाई देगा की एकन्द्रिय भी परहित की प्रवृत्ति में संलग्न है।

वृक्ष मीठा,मधुर फल देते है, शीतल छाया देते है। वायुकाय तो जीवन-आधार है। अपकाय के बिना जी कैसे सकेंगे ? हमारा जीवन एकेन्द्रियों की सहायता और सहकार के बिना संभवित ही नहीं है। कुदरत से लेने के बाद हमने बदले में क्या दिया है ? लेने में जो होशियार होते है उसने देने में भी उदार बनना ही चाहिये।

हमारे पूर्वजों ने जगह जगह पर तीर्थों का निर्माण किया है । जिनालय बंधवाये, धर्मशालाए, भोजनशालाएं बनवाई अतःहमारी यात्राएं आज सरल बन गयी है । तो हमारा कर्तव्य क्या है ? विश्व में विकसित हुई सभी सुविधाओं का लाभ लेनेवाले हमने दुसरों के लिये कैसी सुविधायें मुहैया की है ? इसका चिंतन करने योग्य है ।

दुष्काल के समय चारों तरफ दानशालाएं खोलकर पुण्यधन एकत्रित करनेवाले जगडु शाह को याद करो ।

सब को धर्म प्राप्त कराकर अरिहंत मार्ग के आराधक बनाने के लिये सवालाख जिनमंदीर और सवा करोड जिन प्रतिमाओं का निर्माण करनेवाले सम्राट संप्रति को याद करो ।

परमात्मा के जीवदया के संदेश को घर-घर और घट-घट में पहुंचाने के लिये अठ्ठारह देशो में अमारी पडह की उद्‌घोषणा करनेवाले कुमारपाल राजा को याद करो ।

अकबर जैसे क्रुर और हिंसक राजवी को अहिंसा का पुजारी बनानेवाले हीरसूरिश्वरजी महाराज को स्मृति पर ले आओ ।

साधार्मिक भक्ति द्वारा उदा को उदयन मंत्री और जिनशासन का अनन्य उपासक बनानेवाली बुढिया को याद करें ।

अन्न,पानी,वस्त्र, पात्र आदि की सहायता द्वारा बाह्य परोपकार और परमात्माके धर्ममार्ग उपर चढाकर अभ्यंतर परोपकार करने के लिये हमें उत्तम मौका मिला है । श्रावक बनने के लिये पर की चिंता करना जीवन में अनिवार्य बन जाता है । आज दिन तक हम स्व की चिंता में याने केवल स्वार्थ में बैठे थे पर अब स्व के स्वार्थ से बाहर निकलकर परोपकार के मौके को साधने में प्रचंड स्वत्व बताना है ।

हाथी के भवमें ''स्थानदान'' के छोटेसे परोपकार के कारण श्रेणिक राजा का पुत्र बनने का सौभाग्य मेघकुमार को प्राप्त हुआ ।

दुष्काल में पंच पकवानो से सब की प्रेमपूर्वक भक्ति करने से ही संभवनाथ प्रभु के जन्म समय में अकाल सुकाल में परिवर्तित हो गया ।

पर हमारी हालत खराब है । आज हम परोपकार में प्रवृत्ति करने के बजाय उपकारी के उपर उपकार करने में असमर्थ है । उपकारियों के प्रति हमारी उपेक्षा वृत्ति ही है । कैसे लगेगा हमारा नंबर श्रावक के श्रेणी में ।

जागो, उठो, उपकारी बुजूर्गों के उपकारों को दृष्टि के सामने लाकर विश्व के जीवों को सहायता करने, उनकी सेवाका लाभ लेने सत्वर तैयार हो जाओ । 'परोपकार' पुण्य संचयहो सके इतना कर लेना है ।

परोपकार के व्यसन को जीवन में मजबूत बनाये । भवोभव में अरिहंत के मंत्र का रटन चालु रहे और उसके द्वारा सतत स्व पर कल्याण को प्राप्त करें यही इच्छनीय है ।

२१. लब्धलक्ष :-

लक्खेइ लब्ध लक्खो,
सुहेण सयलंपि धम्मकरणिज्जं ।
दक्खो सुसासणिज्जो,
तुरियं च सुसिक्खि ओ होइ ।।२८।।

लब्धलक्ष्य पुरुष सुखपूर्वक सहजतासे सब धर्म कर्तव्य जान सकता है । वह सयाना, समझदार होने से जल्द सीखता है, विकास कर सकता है...२८

एक था विद्यार्थी पढने में होशियार, उसका सपना तो डॉक्टर बनने का, बारहवी क्लास में ९८-९९ प्रतिशत मार्क्स मिलें तो ही स्वप्न साकार होनेवाला था ।

ग्यारहवीं कक्षा की परीक्षा हो गयी और उस विद्यार्थी ने संकल्प कर लिया कि बारहवीं में ९८% मार्क्स लाने ही है ।

अब उसे खाने में रस नहीं, पीने में रस नहीं
घूमने में रस नहीं, फिरने में रस नहीं
सिनेमा में रस नही, नाटक में मन नहीं है
टीव्ही की ओर देखना नहीं, विडीयो की बात नहीं
क्रिकेट मैच की धून नहीं, वर्ल्ड कप का मोह नहीं
नींद और आराम भी करना नहीं है
बस एक ही धुन है, पढाई, पढाई, पढाई ।
खाना चालु हो पर मन में अभ्यास का ही रटन हो,

चलने की, बैठने की, बातें करने की क्रियाएँ चालू हो पर लक्ष्य एक ही है परीक्षा में ९८% लाना है ।

और सचमुच उसने ९८.९८% लाये ।

बस जो बात बाह्य जीवन के लिये है वही बात अभ्यंतर जीवन के लिये भी है ।

जिसका लक्ष्य निश्चित हो गया है, उसकी क्रियाएँ यद्यपि सभी चलती हो पर उसका लक्ष्य मजबुत होने से क्षणभर भी वह भूलता नहीं है । ऐसी व्यक्ति सफलता का वरण किये बिना रहती नहीं।

याद आती है योगीराज आनंदघनजी महाराज की 'मन' को वश करनेकी सज्झाय -

उदरभरण के कारण रे,
गौआ वनमां जाय,
चारो चरे चिहुंदिशी फिरे रे,
वांकु चित्तडुं वाछरिया मांय,
चार पांच सहेली मिलकर,
हिलमिल पाणी जाय,
ताली दीये खडखड हसे,
वांकु चित्तडुं गागरीया मांय....

पेट भरने के लिये गायें वन में जाती है, चारा चरती चरती चारों तरफ घूमती है, परंतु उनका चित्त तो अपने बछडों में ही होता है ।

चार,पांच सहेलियाँ मिलकर पानी भरने जाती है, हंसी ठिठोली करती है, बांते करती है, एक दुजे को ताली देती है, परंतु उनका चित्त तो अपने बेडे में, घडे पर ही होता है ।

उसी तरह नट नगर के चौक में नाच करता हो, कितने लोग आते है, कितने जाते है, पर उसका चित्त तो अपनी दोरी पर ही रहता है ।

जुआरी बांते करता हो, खाता-पीता हो, चारों ओर देखता हो, पर उसका चित्त तो जुएं में ही चिपका हुआ रहता है ।

इसी तरह हम हमारी सब व्यावहारिक क्रियाएं करते हो पर यदि हमारा लक्ष्य समझ गया हो, लक्ष्य प्राप्त हो गया हो, मजबूत बन गया हो तो सब क्रियाओं में कहीं भी रस जागृत होना नहीं, मन लगता नहीं, हमारा मन सतत लक्ष्य प्राप्ति की ओर दौडता रहता है । ऐसे जीवों को 'लब्धलक्ष्य' कहते है ।

भरत महाराजा 'लब्ध लक्ष्य' थे तभी तो संसारसे भयभीत होकर उन्होंने अंतःपूर में एक खास सेवक रखा था जो भरत महाराजा को सतत जागृत रखता था, चेत...चेत...भरत, काल नगारा देत ।

हमने अनादि काल से संसार में सत्ता,संपत्ति, स्त्री आदि को प्राप्त करने का लक्ष्य रख बहुत सहन किया है, पर उससे अब तक आत्मकल्याण हुआ नहीं है, होगा भी नहीं, इसीलिये शास्त्रकारों ने संसार के लक्ष्य को महत्व नहीं दिया । ऐसा सब तो प्रत्येक भव में प्राप्त हुआ है, अथवा छोडकर आये है । अब ऐसा कुछ पाना है कि जो पाने के बाद कभी कुछ पाने जैसा शेष न रहता हो, ऐसा शाश्वत धाम, अक्षयस्थिति को प्राप्त करने का लक्ष्य पाने के लिये हमें जागृत कर कर्तव्य की ओर पुकार रहा है ।

श्रावक जीवन के इस महत्वपूर्ण गुण को जीवन में आत्मसात करना अत्यंत आवश्यक है ।

एक बार लक्ष्य निश्चित हो जाय फिर स्वंयमेव संसार की सब सामग्री में से मन उठ जायेगा । जीवन

में वैराग्य मजबूत बनेगा । मन मोक्ष की ओर दौडने लगता है । फिर उसे आहार संज्ञा नहीं सताती । भय भुलावे में नहीं डालता, मैथुन संज्ञा पीडती नहीं, परिग्रह की जरुर नहीं लगती, वह तो त्याग के झूलेपर झूलता है, विरति के रास्ते आगे बढता है, साथ साथ सर्वविरति को पाने के लिये सतत पुरुषार्थ करता है ।

यह जीव सयाना और समझदार होने से उसका मन और जीवन सुंदर ढंग से संस्कारित करते जाता है ।

कामदेव श्रावक, आनंद श्रावक आदि संसार में थे तब भी अपने लक्ष्य और कर्तव्य के प्रति जागृत थे । पर्व तिथि पर पौषध आदि की आराधना में अप्रमत्त थे । सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि के बीच भी कभी भी धर्म को और अपने आत्मलक्ष्य को भूले नहीं थे । जहां लक्ष्य मजबूत हो वहाँ सिद्धि सहज होती है । हमें हमारे जीवन में 'लब्धलक्ष्य' बनना है । अनादि से संसार के लक्ष्य को मजबूत बनाकर की हुई मेहनत निरर्थक हुई है । अब मेहनत को सफल बनाने सच्चे लक्ष्य के स्वामी बने ।

लक्ष्य चूक जाय तो मार्ग भुलाया जाता है । संसार घटने के बाजय बढ जाता है । श्रावक कहीं भी जाये वह सजग होता है । सावधान होता है, जागृत होता है, सन्मार्ग का पथिक बनकर आत्मकल्याण का साधक बनता है । पर यदि 'लब्धलक्ष्य' न हो तो यहाँ वहाँ ठोकर खाकर जीवन बरबाद करता है । बहुत भव चुक गये, गँवाये, जीवन बर्बाद किये । श्रावक ! मौका गँवाना तुझे नहीं चलेगा, अनेक भवों में जो नहीं कर पाये वह इसी भव में कर लेना है, प्राप्त कर लेना है ।

लक्ष्य को मजबूत बनाकर चले जा, साधना के पथपर, मंझिल पर सिद्धि तेरी राह देख रही है ।

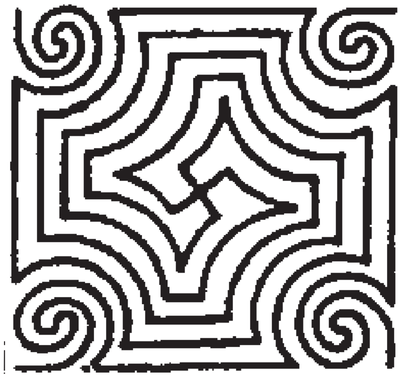

जीव-विचार

मृत्यु (मरण) क्या है ? इसकी जीव-विचार की व्याख्या हमने गत अंक में जान ली ।

संसार में हम जब कहते है कि ''फलाने भाई मर गये '' याने उस मानवी का आत्मा का और द्रव्य प्राणों का वियोग हुआ, याने आत्मा देह छोडकर कर्मानुसार अन्य गति में जाती है । यह मृत्यु वह पर्याय से जीवित जीव का मरण है, पर आत्मा तो अमर है, उसका मरण असंभवित है । ऐसे मरण जीव ने कितनी बार अनुभवे हैं और कहाँ तक वह परंपरा चालू रहेगी वह समझाते हुए कहते है -

अेवं अणोर - पारे संसारे सायरम्मि भीमम्मि ।
पत्तो अणंत-खुत्तो जीवेहिं अपत्त - धम्मेहिं ।।४४।।

अनादि अनंत ऐसे भयंकर संसार रुपी सागर में धर्म न पाये हुए जीव इस प्रकार से अनंतबार मरण पाये हैं ।

यह संसार कैसा है ?

जिसकी कहीं शुरआत नहीं ... इससे अनादि है
जिसका कहीं अन्त नहीं....इसलिये अनंत है
जो सतत भय में रखने वाला और भय का निर्माण करने वाला है... इसलिए ही भयंकर है, ऐसे संसार में हम सभी ने अनंत जन्म मरण किये हैं...अनंत बार जन्मे है, अनंत बार मरे है...
किसलिए जन्म लेने पडे ? किसलिए मरना पडा ?
तथा हम ऐसे जन्म नहीं चाहते ?... ऐसे मरण नहीं चाहते ?
मृत्यु (मरण) से बचना है तो जन्म से बचना पडे.. कारण मृत्यु के पश्चात जन्म न लेना पडे ऐसा बन सकता है, परंतु जन्म लेने के पश्चात मृत्यु टालने का कोई उपाय नहीं ।

अगर मरना नहीं है तो जन्म लेने का छोड दो, जन्म-मरण से छूटने का एक मात्र उपाय धर्म है ।

यहाँ उपर की गाथा में यही बात कही है, हमने धर्म नहीं पाया इसीलिए जन्म मरण के चक्र में फिरते रहे हैं, अगर धर्म पाया होता तो जन्म मरण के फेरे नहीं फिरने पडते ।

संसार में सुख बहुत है, सुख के साधन भी बहुत है, सुख के निमित्त भी बहुत है, सुख के कारण भी अनेक हैं, पर सभी सुख का मूल पुण्य है, धर्म है ।

संसार में दुःख भी बहुत है, दुःख के निमित्त भी बहुत है, दुःख के कारण भी बहुत हैं, दुःख के प्रकार भी बहुत है, दुःख के उपाय भी बहुत हैं, पर सभी दुःखो का मूल कारण पाप है, अधर्म है ।

सभी दुःखों में सबसे बडा दुःख मरण का दुःख है, उसका कारण धर्म की अप्राप्ति है और इस महादुःख का एक मात्र रामबाण उपाय है धर्म ।

आत्मा के अमरत्व को पाने के लिए जब धर्म ही एक शरण है तो जीवन की प्रत्येक पल को हम धार्मिक क्यों न बतायें ? जीवन के हरेक कार्य के साथ धर्म को क्यों न जोड दें ? आज दिन तक अज्ञान दशां में बहुत काल व्यतीत किया, अब ''धर्म'' के सच्चे मर्मं को जानकर मानव जीवन में मिली सर्व शक्ति और सर्व समय को धर्ममय बनाने का पुरुषार्थ प्रारम्भ करें ।

तह चउरासी लख्खासंखा जोणीण होई जिवांण ।
पुढवाइणो चउण्हं पत्तेयं सत्त सत्तेव ।। ४५ ।।

जीवों की योनियाँ चौराशी लाख हैं ।

पृथ्वीकायादि चार में एक एक की सात सात लाख है । जीवों के उत्पन्न होने का स्थान वह योनि है । योनि असंख्य हैं । वर्ण जाति आदि की समानता से एक भेद गिनते चौर्यासी लाख हैं । पृथ्वीकाय अपकाय, तेउकाय और वायुकाय की सात सात लाख योनियां हैं ।

अन्य योनियों की संख्या बताते हुए कहते हैं -

दस पत्तेय-तरणं चउदस लक्खा हवंति इयरेसु ।
विगलिं दिएसु दो दो, चउरो पंचिदि तिरियाणं ।।४६।।
चउरो चउरो नारय - सुरेसु मणुआण चउदस हवंति ।
संपिंडिया य सव्वे चुलसी लक्खा उ जोणिणं ।।४७।।

आगे योनिओ की संख्या बताते हैं । प्रत्येक वनस्पतिकाय की दस लाख योनियाँ हैं । इतर याने साधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख योनियां है । विकलेन्द्रिय याने द्विइंद्रिय, तेइंद्रिय, चउरेंद्रिय की संख्या दो दो लाख है । नारक और देवता की चार चार लाख योनियां हैं । जबकि मनुष्य की चौदह लाख योनि है । इस तरह सब मिलाकर चौर्यासी लाख संख्या होती है ।

पृथ्वीकाय	-	७ लाख
अपकाय	-	७ लाख
तेउकाय	-	७ लाख
वायुकाय	-	७ लाख
प्रत्येक वनस्पतिकाय	-	१० लाख
साधारण वनस्पतिकाय	-	१४ लाख
द्विइंद्रिय	-	२ लाख
तेइंद्रिय	-	२ लाख
चउरेंद्रिय	-	२ लाख
तिर्यंच पंचेंद्रिय	-	४ लाख
देवता	-	४ लाख
नारकी	-	४ लाख
मनुष्य	-	१४ लाख
कुल	-	८४ लाख जीवयोनी

योनि के ८४ लाख भेद अन्य धर्मों में भी स्वीकार किये गये हैं । जैन दर्शन में अन्य भेद से भी योनि के प्रकार बताये हैं -

१. योनि के तीन भेद है - अ) संवृत ब) विवृत क) मिश्र

स्पष्ट रुप से पता न चले वह संवृत, जो देव और नारको को होती है । स्पष्ट रुप से पता चले वह विवृत जो विकलेंद्रिय और असंज्ञि पंचेंद्रिय को होती है । कुछ स्पष्ट कुछ अस्पष्ट वह मिश्र जो गर्भज तिर्यंच और मनुष्य को होती है ।

२. दूसरे प्रकार से योनि स्वयं के तीन भेद कहे है - अ) शीत ब) उष्ण क) शीतोष्ण

प्रथम तीन नरक के और चोथी नरक के उपर के प्रतर में योनि शीत होती है, नरक के नीचे के प्रतर में उष्ण योनि होती है । देव तिर्यंच और मनुष्य की शीतोष्ण होती है ।

३) अन्य प्रकार से सचित्त, अचित्त और मिश्र (सचित्ताचित्त) से भी योनि के भेद होते है ।

संसारी जीवों के स्वरुप को समझाने के पश्चात अब मुक्त ऐसे सिद्धगति के जीवों के स्वरुप को समझाते हुए कहते हैं -

सिद्धाणं नत्थि देहो, न आउ कम्मं न पाण जोणीओ।
साई अणंता तेसिं ठिइ, जिणंदागमे भणिया ।।४८।।

सिद्ध के जीव कैसे हैं ? तो बताते है -

सिद्ध के जीवों को शरीर नहीं, सिद्ध के जीवों को आयुष्य नहीं, सिद्ध के जीवों को कर्म नहीं, सिद्ध के जीवों को प्राण नहीं , सिद्ध के जीवों को योनि नहीं ।

जिनेश्वर भगवंत (तीर्थकर) प्ररुपित आगमों में उनकी स्थिति सादि अनंत कही गयी है । सादि याने स + आदि ।

आदि याने शुरुआत, जो शुरुआत सहित है उसे

सादि कहते है । आत्मा जब मोक्ष में जाता है, तब सिद्धगति की शुरुआत होती है, इसीलिये सिद्ध के जीवों की स्थिति सादि है ।

पर एक बार सिद्ध बनने के पश्चात, सिद्धगति को पाने के पश्चात फिर जीव वहाँ से कहीं भी जाता नहीं, दूसरी गति पाता नहीं, सदा-सदा काल के लिये सिद्ध गति में ही, सिद्धशीला के उपर ही रहता है । इसीलिए उसकी स्थिति सादि के साथ अनंत कही । अनंत याने अंत रहित, जिसका कभी भी अंत नहीं ऐसी ।

आयुष्य हो तो क्षय होकर नाश हो पर यहाँ तो आयुष्य ही नहीं शरीर हो तो नाश हो पर यहाँ तो शरीर ही नहीं, कर्म हो तो भोगने पडे पर यहाँ तो कर्म ही नहीं इससे आत्मा स्वयं के मूल से, सत्य स्वभाव दशा को प्राप्त करती है और सदा काल उसी दशा में रहती है ।

काले अणाई निहणे, जोणि गहणंभि भीसणे इत्थ ।
भमिया भमिहंति चिरं, जीवा जिणवयण मलहंता ।।४९।।
ता संपइ संपते, मणुअत्ते दुल्लहेवि सम्मते ।
सिरि संति सूरि सिद्दठे, करेह भो उज्जमं धम्मे ।।५०।।
एसो जीवविचारो, संखेव रुईण जाणणाहेउ ।
संखितो उद्धरिओ, रुदाओ सुय सुमद्दाओ ।।५१।।

जीव अनादिकाल से गहन, गहरे और भीषण, याने भयंकर ऐसे संसार सागर में भटके हैं, भटक रहे हैं और भटकते रहेंगे, चौदह राजलोक में चौर्यासी लाख जीवयोनि में जीवों ने अनादिकाल से कैसे कैसे भयंकर दुःख पाये हैं ? क्षणवार तो इन दुःखो को याद करो ।

कभी यह जीव राजा बना, कभी भिखारी बना ।

कभी देवलोक में गया, कभी नारक बना । कभी हाथी बना, कभी चिंटी का देह पाया । कभी घास बना, कभी दास बना, कभी सुवर्ण बना, कभी सेवक बना । कभी माता बना, कभी पुत्र बना । कभी पुत्री बना, कभी पत्नि बना ।

कैसी कैसी विचित्रता भोगी इस जीव ने । एकबार नहीं, अनेकबार नहीं, अनंती, अनंतबार ऐसी दशा पाई फिर भी उसके अनादि के इस संसार चक्र को ब्रेक नहीं लगा । जानते हो क्यों । किस लिये हमें भटकना पडा ? क्यों हम भटक रहे हैं ?

स्वयं शांतिसूरीश्वरजी महाराज उसका जवाब देते हुए कहते है -

जीवा जिणवयण मलहंता ।

कितनी सरल और सहज बात बताई है । जिन जीवों को जिनेश्वर परमात्मा के वचनों की प्राप्ति होती नहीं वे जीव संसार में भटकते हैं, भटक रहे हैं, और भटकेंगे, पर जिन जीवों को जिनेश्वर परमात्मा के वचन मिले हैं वे जीव भवभ्रमण से अटकें हैं, अटकते है, अटकेंगे ।

हम आज तक भटक रहे हैं, यही बात बता रही है कि हमें जिनवाणी नहीं मिली, समझे नहीं, इसिलिये तो श्री शांतिसूरश्वरजी महाराज हम सभी को जीव विचार के माध्यम से जिनेश्वर परमात्मा की वाणी समझाते है । हमारा जीव कहां कहां भटक कर आया है । वहां वहां उसके कैसे कैसे हाल हुए हैं, उसका परिचय कराते हैं । जीव अगर इन जिन वचनो को जान कर, विचार कर, चिंतन और मनन करके नवनीत प्राप्त करे तो जरुर वैराग्य जागृत हो । सामान्य वैराग्य न हो पर ज्ञान गर्भित वैराग्य जीव प्राप्त कर ले, संसार के परिभ्रमण से थक जाए, कंटाल जाय, ''नहीं, अब इस संसार में और नहीं घूमना'' ऐसे उद्‌गार मुंह से निकल पडें ।

अनादि के भ्रमण का अंत लाने के अरमान जागे वगैर न रहे । अनंत के आकाश में उडने के लिये पंख

फडफडाने लगे, ज्ञानकी आंख और क्रिया की पांख से साधना के गगन में उडता जीव अप्रमत्त बने, क्षणभर भी प्रमाद में न फंसे, सिद्धि के शिखर की तरफ बढता ही रहे। ऐसे साधक को ज्यादा जागृत करने के लिये श्री शांति सूरीश्वरजी म.सा. कहते है - हे जीव तू कहाँ कहाँ घूमा वह तूने जाना, अभी तू कहाँ है ? कौन है ? उसकी तुझे खबर है ?

वर्तमान में पुण्ययोग से दुर्लभ ऐसे मनुष्यभव की प्राप्ति हुई उससे भी विशेष दुर्लभ ऐसे जिनेश्वर परमात्मा के वचनो की प्राप्ति हुई अब क्या बाकी है, सब कुछ मिला, बस लग जा अब उद्यम में, भगीरथ पुरुषार्थ कर, कुछ भी असंभवित नहीं है। एकबार सम्यगदर्शन पाने के लिए सही प्रयत्नों में लग जा।

निश्चय सम्यगदर्शन के लिये व्यवहारिक सम्यगदर्शन अत्यंत आवश्यक है। और व्यवहार सम्यगदर्शन के लिये जिनेश्वर के वचनो पर अडिग श्रद्धा अनिवार्य है।

''हे प्रभु ! आपने जो कहा है वही सत्य है। सचमुच आपने जीव विचार में संसारी जीव के जो जो भेद बताये है, उन सभी में मेरा आत्मा अनंतबार घूम आया है। '' नजर के सामने सभी योनियों में दुःख, वेदना, प्रतिकूलता और पराधीनता से सहन करता स्वयं का विकृत स्वरुप दिखने लगे इन सभी दुःखो में से मुक्त करने की, करवाने की क्षमता रखने वाले जिन वचनों पर अत्यंत पूज्यभाव जागे और यह जीव दुःख और दुर्गति से बचने के लिये परमात्मा के चरणों की शरणागति स्वीकार कर ले।

संपूर्ण श्रद्धा और शरणागति के साथ भवभ्रमण टालने के लिये सख्त परिश्रम उद्यम करने के लिये जीव स्वयं का वीर्य (शक्ति) स्फूरित करे।

जिन्होने भी श्रद्धा और समर्पण के साथ आत्मवीर्य स्फूरित किया वे सभी जीव संसार सागर पार कर गये हैं और करेंगें।

ऐसी परंपरा को आगे बढाने के मंगलमय हेतु से श्री शांतिसूरिश्वरजी म.सा. ने श्रुत सागर में से संक्षिप्त करके इस जीवविचार को आलेखित किया है।

अपने आज के विकृतरुप को ही नहीं बताया जीवविचार में, परमात्मा के वचनों का आलंबन पाकर जीव कैसे स्वरुप को पा सकता है, उसकी समझ भी मुक्त जीवों का स्वरुप बता कर हमें दी है।

जीव की शिवयात्रा का प्रबल आलंबन सर्वज्ञ भगवंत के वचन है। इन वचनो का आलंबन लेने वाले सभी भव्य संसारी जीव सभी जंजीरों में से स्वयं की आत्मा को मुक्त करके लाखो योजन दूर सिद्धशिला के उपर स्वयं के शाश्वत धाम में स्वआत्मा को परमात्मा बनाकर सिद्धात्मा बनाकर सदाकाल के लिए स्थिर कर सकते हैं, शाश्वत अनंत सुख में रमण कर सकते है।

''जीव-विचार '' के मंगलमय माध्यम से सभी में उच्च कोटि का वैराग्य जन्मे, अप्रमत्त उद्यम प्रगटे, वीर्य उल्लसे, हमारी सभी की आत्मा सतत अखंड रुप से मुक्ति मार्ग का प्रवासी बनकर अनंतः सिद्धशिला का निवासी बने यही प्रभु के पास प्रार्थना।

''जीव-विचार'' विवेचन समाप्त।

जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो त्रिविधे त्रिविधे मिच्छामि दुक्कडं।

नव - तत्व.... (मोक्ष तत्व)

अनादि की चार गति और चौर्यासी लाख जीव योनि के भ्रमण का अंत लाना हो तो मोक्ष, मंजिल की प्राप्ति अनिवार्य बन जाती है। मोक्ष ऐसे अनंत सुख का स्थान है जहाँ सभी दुःख दोष और दर्द का अंत हो जाता है। ऐसे अनंत सुख के धाम को अनंत आत्माओ ने पा लिया हम रह गये हम बहुत बार स्तवन में भी गाते है - "प्रभु हम साथ में खेले, साथ में खाया, साथ में घूमे परंतु आज सुख भरे मोक्ष में आप बिराजमान हो, जबकि मैं दुःख भरे संसार में भ्रमण कर रहा हूँ। प्रभु मेरे उपर कृपा करो मुझे आपके बाजू में स्थान दों।"

चलिये ! सिर्फ मांगने से वस्तु मिलती नहीं, इसके लिये किंमत चुकानी पडती है। हमें मोक्ष नगरी में जाना है, तो उसके लिये पासपोर्ट-विझा तैयार करना ही पडता है। सम्यगदर्शन यह तो मोक्ष-नगरी का प्रवेशद्वार है। सम्यग् दर्शन के बिना मोक्ष नगरी में प्रवेश संभवित नहीं।

जो जीव मोक्ष नगरी में पधारे उन्होनें आत्मा की निर्मलता के द्वारा प्रथम सम्यग् दर्शन की प्राप्ति की थी। आइये मोक्ष में पहुंचने के लिये मोक्ष तत्व को समझें। मार्ग में आने वाले सारे विघ्नों को दूर करें। नौ के नौ तत्वों को गहराई से पहचाने और उस पर श्रद्धा मजबूत करें, जिससे अरिहंत परमात्मा और उनकी वाणी के उपर अजब-गजब का विश्वास निर्माण होगा। जहाँ मोक्ष की रुचि वहाँ नव तत्व का ज्ञान, जहाँ नवतत्व का ज्ञान वहां तत्व श्रद्धा रुप सम्यग् दर्शन और जहाँ सम्यग् दर्शन वहाँ मोक्ष की पात्रता, योग्यता और जहाँ पात्रता वहाँ प्राप्ति इस न्याय से मोक्ष के अधिकारी बन कर ही रहेंगे।

जीवाइ नव पयथ्थे, जो जाणई तस्स होई सम्मतं।
भावेण सद्हंतो, अयाण माणेवि सम्मतं।। ५१।।

जीवादि नौ तत्व को जानता है, उसे सम्यक्त्व होता है। भाव से श्रद्धा करने वाले को अज्ञानवान (बोधरहित) होने पर भी सम्यक्त्व होता है। सम्यक्त्व यह आत्मा का गुण है। जब जीव को नवतत्व की जानकारी मिलती है, समझ आती है, नवतत्व सच्चे हैं,ऐसी श्रद्धा होती है, तब आत्मा में सम्यग् दर्शन का गुण प्रगट होता है।

जीव,अजीव,पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा, मोक्ष इन नवतत्व को जीव जब जानता है, समझता है तब संपूर्ण विश्व के स्वरुप की और मोक्षमार्ग की यथार्थ जानकारी उसे प्राप्त होती है। तब उसे अन्य कहीं भी जाने की जरुरत लगती नहीं। ज्ञान का अखूट खजाना उसे यहीं मिल जाता है। इतना ही नहीं इस ज्ञान के प्रति उसका बहुमान भी उतना ही उत्कृष्ट होता है। ऐसा ज्ञान, ऐसी समझ, ऐसी सूक्ष्मता दूसरे कहीं भी मिलना अंसभवित है। ऐसा जो साधक जानता है, वह सम्यक्त्व का स्वामी है। इतना ही नहीं, पर उससे आगे बढकर कहते हैं, नवतत्व न भी जाने, न भी समझे परंतु भावपूर्वक की जो श्रद्धा है तो वहाँ भी अवश्य सम्यग् दर्शन है।

सम्यग् दर्शन आत्मा का गुण है। केवलज्ञानी अथवा विशिष्ट ज्ञानी के बिना दूसरे के सम्यग् दर्शन को देख-जान नहीं सकते हैं। उत्तराध्यन सूत्र में समकित के ६७ लक्षण कहे हैं। अगर अपनी आत्मा पर मुल्यांकन करें तो अनुमान से हम अपने और दूसरों में उसकी हाजरी हैं, या नहीं यह जान सकते हैं।

अपने सद्भाग्य से नवतत्व के ज्ञान द्वारा हमें सम्यग् दर्शन प्राप्ति का सुअवसर मिला है। यह अवसर हाथ में से निकल जाये इससे पहले हम जाग जायें, पुरुषार्थ द्वारा नवतत्व को आत्मसात करें,

नवतत्व से सम्यग् दर्शन पायें, सम्यग् दर्शन से संसार को मर्यादित बनायें । मोक्ष मार्ग के सच्चे मुसाफिर बनकर सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्र के आराधक बन कर सिद्धगति के स्वामी बनें ।

सव्वाइं जिणेसर, भासिआइं वयणाइं जन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धि जस्स मणे, सम्मतं निच्चलं तस्स ।।५२।।

श्री जिनेश्वर देव के कहे हुए समस्त वचन अन्यथा (असत्य) नहीं होते ऐसी बुद्धि (श्रद्धा) जिसके मन में हो उसका सम्यक्त्व निश्चल है ।

जिनेश्वर परमात्मा के प्रति जहाँ श्रद्धा हो वहीं परमात्मा के वचन के प्रति विश्वास होता है । जिनेश्वर परमात्मा को असत्य बोलने का कोई कारण नहीं । मनुष्य असत्य कब बोलता है ? शास्त्रों में उसके चार कारण बताये हैं ।

कोहा वा लोहा वा भया वा हासां वा १) क्रोध से २) लोभ से ३) भय से अथवा ४) हास्य से ।

जिनेश्वर परमात्मा का स्वरुप कहता है कि, जिनेश्वर जो कर्म विजेता हैं, मोहनीय कर्म को उन्होंने जीता है । जहाँ मोह है, वहाँ क्रोध,लोभ,भय, हास्य हैं । जिनेश्वर परमात्मा इन चारों से रहित हैं । उनका वचन असत्य कदापि नहीं हो सकता । सत्य ही होता है । अरिहंत परमात्मा के प्रति जिनके हृदय में ऐसी अतुट श्रद्धा है वहाँ निश्चित समकित का वास है । उस व्यक्ति का समकित अत्यंत मजबूत है । परंतु अगर परमात्मा के वचनों की सत्यता में कहीं भी शंका उत्पन्न होती है मन में प्रश्न उठते हैं, तो जीव सम्यक्त्व टिका नहीं सकता वह सम्यक्त्व गुमा बैठता है । परमात्मा के सभी वचन मान्य हो पर एक वचन अमान्य करे तो वहाँ समकित संभवित नहीं । जमालि को प्रभु के सभी वचन मान्य थे, परंतु एक ही वाक्य में अश्रद्धा हुई और जीव मोक्ष प्राप्त करने के लिये अयोग्य और अपात्र बना ।

अपनी बुद्धि का निरिक्षण करें कहीं शंका-कुशंका हो तो सभी को शीघ्र ही दूर करके प्रभु के सभी वचनों के आराधक बनें । निर्मल बुद्धि के स्वामी बन कर सम्यक्त्व के साधक बने तो ही मुक्ति के द्वार हम सभी के लिये खुल जायेंगे ।

अंतो मुहुत्त मितंपि, फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मतं ।
तेसिं अवड्ढ पुग्गल, परिअट्टो चेव संसारो ।। ५३।।

जिन जीवों को अन्तमुहुर्त मात्र भी सम्यकत्व का स्पर्श हो जाता है, उनका संसार निश्चित ही अर्धपुद्गल परावर्त जितना बाकी रह जाता है ।

अनंत संसार का अंत लाना है ?

उसका उपाय एक मात्र एक ही है और वह है सम्यग्दर्शन की प्राप्ति । अनादि काल से हमने संसार की चार गति और चोर्यासी लाख जीवयोनि में परिभ्रमण किया, अभी भी हमारे संसार का अंत या संसार सागर का कोई किनारा दिखता नहीं । ऐसा किसलिये ? कब होगा हमारे संसार का अंत । कब शरु होगी हमारी अंतिम भवों की गिनती, उसका जवाब उपरोक्त गाथा में दिया है । बहुत ही महत्व की बात बताई है । फक्त अन्तमुहुर्त काल के लिये भी अगर एक बार भी सम्यग् दर्शन का स्पर्श आत्मा को हो जाये तो उसके अनंत संसार को ब्रेक लग जाता है । संसार मर्यादित बनता है । ज्यादा से ज्यादा अर्धपुद्गल परावर्तन काल जितने समय में जीव निश्चित मोक्ष पाता है । सिद्ध-बुद्ध और मुक्त बनता है ।

अर्ध पुद्गल परावर्तन काल यह भी बहुत लंबा समय है । परंतु संसार की मर्यादा नक्की हो जाती है, यह महत्व का है । ऐसे सम्यग् दर्शन को प्राप्त करने का सुअवसर हम सभी को प्राप्त हुआ है । मनुष्य देह, आर्य क्षेत्र और जिनेश्वर परमात्मा का जयवंता शासन इस त्रिपुटी की सुंदर आराधना हमें सम्यग् दर्शन की सुंदर भेंट देने के लिये समर्थ है । जिन जीवों ने प्रमाद

को त्याग कर प्रभु की आज्ञा स्वीकारी सत्य मार्ग स्वीकार करके आगे बढे वे उसे पाकर ही रहे हैं।

पूर्व भव के अद्भूत पुण्य से मिले इस मौके की तकदीर बना कर हम अपना कार्य साध लें। सम्यग् दर्शन पाने के लिये नवतत्व को समझ कर, सीखकर, विचारकर, चिंतन मनन करके हृदय में धारण कर स्थिर करें। संसार को ब्रेक लगाने का यही एक सहज सरल उपाय है। आचरण करें भाव से, स्वीकारें सन्मान से सफलता, सिद्धी निश्चित है।

उस्सपिणी अणंता, पुग्गल परिअट्टओ मुणेअव्वो।
तेणं ताती अद्धा, अणागयद्धा अणंत गुणा ।।५४।।

अनंत उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी का एक पुद्‌गल परावर्तकाल जानना। ऐसे अनंत पुद्‌गल परावर्त का अतीतकाल और उससे भी अनंत गुना अनागत काल है।

दस कोडाकोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी..

दस कोडाकोडी सागरोपम की एक अवसर्पिणी..

ऐसी अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर एक पुद्‌गल परावर्त काल होता है।

ऐसे अनंत अनंत पुद्‌गल परावर्तन बीत गये हम संसार में भटकतें ही रहे, भटकते ही रहे। कैसे बिताया होगा इतना लम्बा काल ? सुख में या दुःख में, संसार में सुख है ही कहाँ जो हमें मिले। यहाँ तो सिर्फ सुखाभास है। शायद अज्ञानता से उसे सुख मान भी लें तो भी ऐसा सुख अति अल्प था। थे सिर्फ दुःख के पहाड। ऐसे लंबे काल तक विविध दुःखों को सहन किये। आगे कहाँ तक दुःख भोगने के ? तो कहते हैं भूतकाल से भी अनंतगुना भविष्य काल है। दुःख भोगना हैं तो बहुत समय हैं परंतु अगर दुःख में से मुक्त होना है तो उसके लिये भी मार्ग है।

कौन सा मार्ग है ? यह मार्ग सिद्ध गति का है, मोक्ष प्राप्ति का है।

जिण अजिण तिथ्थ तिथ्था,
गिहि अन्नसलिंग थी नर नपुंसा।
पतेय सयं बुद्धा, बुद्ध बोहिय सिद्धणिकाय ।।५५।।

जिन,अजिन, तीर्थ, अतीर्थ, गृहस्थलिंग, अन्यलिंग, स्वलिंग, स्त्री पुरुष, नपुसंक, प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध, बुद्धबोधित, एक, अनेक ये सिद्ध के पंद्रह भेद है।

सिद्ध पद पाने के पश्चात सभी आत्मायें समान हैं। वहाँ कोई भी तरतमता नहीं, भेद नहीं। परंतु अपनी जानकारी के लिये सिद्ध पद प्राप्त करते समय, जीव की जो बाह्य अवस्था है, उसके आधार पर सिद्ध के पंद्रह भेद कहे गये हैं। स्त्री सिद्ध बने या पुरुष सिद्ध बने आत्मा का ज्ञान-दर्शन चारित्र समान ही है। उसमें कहीं भी कोई अंतर नहीं। यहाँ गाथा में सिद्ध के नीचे मुजब भेद बताये गये है -

१) जिन सिद्ध २) अजिन सिद्ध ३) तीर्थ सिद्ध ४) अतीर्थ सिद्ध ५) गृहस्थलिंग सिद्ध ६) अन्यलिंग सिद्ध ७) स्वलिंग सिद्ध ८) स्त्रीलिंग सिद्ध ९) पुरुषलिंग सिद्ध १०) नपुसंकलिंग सिद्ध ११) प्रत्येकबुद्धसिद्ध १२) स्वयंबुद्ध सिद्ध १३) बुद्धबोधित सिद्ध १४) एक सिद्ध और १५) अनेक सिद्ध

जिण सिद्धा अरिहंता अजिण
सिद्धाय पुंडरिअ पमुहा।
गणहारि तिथ्थ सिद्धा,
अतिथ्थ सिद्धाय मरुदेवी ।।५६।।

तीर्थंकर जिनसिद्ध है, पुंडरीकादि गणधर अजिन सिद्ध है, गौतमादि गणधर तीर्थ सिद्ध तथा मरुदेवी माता अतीर्थ सिद्ध है।

तीर्थंकर पद पाकर जो मोक्ष में जायें वे जिन सिद्ध कहलाते है। उदा. आदिनाथ, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ वगैरह तीर्थंकर भगवंत।

तीर्थंकर पद पाये बिना सामान्य केवली बनकर मोक्ष में जाये वे अजिन सिद्ध कहलाते है । उदा. पुंडरिकस्वामी, गौतमस्वामी वगैरह ।

तीर्थंकर प्रभु तीर्थ की स्थापना करे पश्चात मोक्ष में जाये वे तीर्थ सिद्ध कहलाते है । उदा. गणधर भगवंत ।

तीर्थ स्थापना से पूर्व (पहले) जो जीव मोक्ष में जाते हैं वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं । उदा. मरुदेवा माता ।

गिहिलिंग सिद्धा भरहो, वल्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि ।
साहू सलिंग सिद्धा थी सिद्धा चंदणा पनुहा ।। ५७।।

भरत चक्रवर्ती गृहस्थलिंग सिद्ध है, वल्कलचीरी अन्यलिंग सिद्ध है, साधु स्वलिंग सिद्ध है तथा श्रमणी प्रमुखा चंदना स्त्रीलिंग सिद्ध है ।

गृहस्थ वेष में जो मोक्ष में जायें वह गृहस्थलिंग सिद्ध कहलाते हैं । उदा. भरत चक्रवर्ती ।

अन्य दर्शनी के वेष में रहा हुआ तापस आदि मोक्ष में जायें वह अन्य लिंग सिद्ध कहलाते हैं । उदा. वल्कलचीरी ।

जैन साधु के वेष में मोक्ष में जायें वे स्वलिंग सिद्ध कहलाते है । उदा. जैन मुनियों ।

जो स्त्रीलिंग अर्थात स्त्री शरीर से मोक्ष में जाये वह स्त्रीलिंग सिद्ध कहलाते हैं । उदा. चंदनबाला

पुसिद्धा गोयमाइ, गांगेय पमुहा नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय सयं बुद्धा भणिया करकंडु कविलाइ ।।५८।।

गौतमादि पुरुषलिंग सिद्ध हैं, गांगेय आदि नपुंसकलिंग सिद्ध है, करंकडु प्रत्येकबुद्ध सिद्ध तथा कपिलादि स्वयंबुद्ध सिद्ध है ।

पुरुषलिंग अर्थात पुरुष शरीर से मोक्ष में जाये वह पुरुषलिंग सिद्ध कहलाता है । उदा. गौतमस्वामी वगैरह ।

कृत्रिम नपुंसक वेद पाकर नपुंसक शरीर से जो मोक्ष में जाये वह नपुंसकलिंग सिद्ध कहलाते है । उदा. गांगेय वगैरह ।

कोई भी पदार्थ या अवस्था देखकर उसके निमित्त से वैराग्य पाकर चारित्र लेकर मोक्ष में जाये वह प्रत्येक बुद्ध सिद्ध कहलाते हैं । उदा. करकंडु राजर्षि ।

जो बिना किसी बाह्य निमित्त के अथवा उपदेश के जातिस्मरणादि से अपने आप स्वतः प्रतिबुद्ध हो, वे स्वयंबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं । उदा. कपिल केवली

तह बुद्ध बोहि गुरु बोहिया य, इग समये इग सिद्धा य ।
इग समये वि अणेगा, सिद्धा ते णेग सिद्धा य ।।५९।।

तथा गुरु से बोध पाया हुआ बुद्धबोधित सिद्ध है । एक समय में एक ही सिद्ध होने वाला एकसिद्ध तथा एक समय में अनेक सिद्ध होने वाले अनेक सिद्ध है ।

गुरुभगवंत का उपदेश सुनकर प्रतिबोधित हो दीक्षा लेकर मोक्ष में जाये वह बुद्ध बोधित सिद्ध कहलाते है । उदा. सुधर्मादि गणधर

एक समय में एक जीव मोक्ष में जाये वह एक सिद्ध कहलाते हैं । उदा. महावीर स्वामी

एक समय में अनेक जीव मोक्ष में जाये वे अनेक सिद्ध कहलाते है । उदा. आदिनाथ प्रभु

जइ आई होई पुच्छा,
जिणाण मग्गंमि उत्तरं तइया ।
इक्कस्स निगोयस्स,
अणंत भागोय सिद्धि गओ ।।६०।।

जिनेस्वर के शासन में जब जब इस प्रकार का प्रश्न पूछा जाता है, तब तब यही उत्तर होता है कि एक निगोद का अनंतवा भाग ही मोक्ष में गया है ।

जिज्ञासु जीवों को प्रश्न होता है कि अनादि काल से संसार है, अनादि काल से धर्म भी है । जीव समय समय पर धर्म करके पुण्यादि का संचय करके शुभ फल पाता है, उसी प्रकार जीव संवर और निर्जरा द्वारा

कर्म से मुक्त होकर परमपद, निर्वाण पद, मोक्ष पद भी पाता है।

अनंत अवसर्पिणी व्यतीत हो गई, अनंत उत्सर्पिणी बीत गई अनंत तीर्थंकर हुए, अनंत गणधर भगवंत हुए, अनंत केवली भगवंत भी हुए, तो फिर कितने जीव गये होंगे ?

कभी तो बहुतों को यह प्रश्न होता है, ''क्या एक दिन ऐसा नहीं आयेगा जब संसार के सभी जीव मोक्ष में चले जायेंगे ? पूरा संसार खाली हो जायेगा। ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर उपरोक्त गाथा में दिया गया है।

जिनेश्वर भगवंत को किसी भी समय पूछने में आये कि ''मोक्ष में कितने जीव गये ? '' तब जिनेश्वर भगवान एक ही जवाब देते है ''एक निगोद का अनंतवा भाग ही मोक्ष में गया है।''

एक निगोद के सभी जीव भी कभी मोक्ष में जाने वाले नहीं तो संसार खाली होने का प्रश्न ही संभवित नहीं।

संसार का क्रम तो ऐसा ही रहने वाला है, चलने वाला है, हम अपना कार्य सिद्ध करके मुक्त बन जाएं।

कर्मबंधके चार प्रकार

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

(शासनपति प्रभु महावीर स्वामी)

कच्छ केसरी, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणसागर सूरिश्वर म.सा.

साधना का पथ प्रशस्त करते हुए अनेकोंके मार्गदर्शक बनते, विविध तप कर कर्मक्षय करते हुए प्रभु ने दसवा चातुर्मास श्रावस्ती नगरी में आकर किया। वहाँ पर प्रभुजी ने विविध तपश्चर्याऐं की और पारणा नगर के बाहर किया।

फिर विहार करते करते ग्राम, नगर पावन करते प्रभुजी अनार्य लोगों के वस्तीवाले दृढभूमि में आये। वहाँ पर पेढाल गांव के बहार पोलोस चैत्य में अठ्ठम तप कर एक रात्री की पडिमा धारण कर रहे। उस समय सौधर्मेन्द्र ने कहा ''श्री वीरप्रभु के ध्यानमग्न चित्त को चलायमान करने के लिये तीनो लोक में कोई भी समर्थ नहीं है।''

इंद्र की वीरप्रभु की इस प्रशंसा को सहन न कर पाने वाले वहां बैठे हुए संगम नामक देव ने कहा ''हे देवेंद्र ! आपने की हुई प्रशंसा देवों के लिये अपमान स्वरुप है। इस तरह प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। मैं उसे क्षणभर में चलायमान कर आता हूँ। उस मनुष्य की क्या क्षमता की वह देवों से चलित न हो।''

ऐसा कहकर क्रोध से धमधमाता संगमदेव प्रभु के पास आया उसने प्रथम धूल की ऐसी वृष्टि की, जिससे प्रभु के मुख,नाक, कान, आँख आदि शरीर के अवयव धूल से भर गये। प्रभु श्वासोश्वास लेने में भी असमर्थ हुए। फिर वज्रमुंह वाली चिंटियाँ विकुर्वी, वे चिटियां प्रभु के शरीर में एक बाजुसे घुसकर दुसरी ओर निकलने लगी। जिससे प्रभु का शरीर चलनी के जैसा कर दिया। परंतु प्रभु मनसे चलित न हुए। उसके बाद वज्र जैसे डंख देनेवाले डांस, मच्छर उत्पन्न किये उनके द्वारा ऐसे डंख दिलवाये की जिससे प्रभु के शरीर से गाय के दूध के समान खून बहने लगा फिर तीक्ष्ण धीमेलों द्वारा संपूर्ण शरीर पर डंख दिलवाकर दुख पहुंचाने लगे। फिर बिच्छु विकुर्वे और प्रभु के शरीर में कठोर डंख मारकर शरीर को भेद दिया। फिर नेवले विकुर्वा कर उग्र दाढों से प्रभु के शरीर का मांस दौड दौडकर तोडने लगे। उसके बाद सर्प जबर्दस्त डंख मारने लगे। फिर विकुर्वे हुए चूहों ने प्रभु को काट खाया फिर विकुर्वे हुए हाथी अपनी सूंढ में पकडकर उछालने लगे। दंतुशूलो पर झेलकर, दांतो से प्रहार कर पैरों के नीचे कुचलने लगे।

फिर विकुर्वी हुई, हथिनीयों ने भी हाथियों की तरह ही पीडा दी। विकुर्वे हुए पिशाचों ने अट्टहास्यदि घोर उपसर्ग कर प्रभु को पीडा दी फिर विकुर्वे हुए वाघो नें वज्र जैसी दाढों से और तीक्ष्ण नखों से प्रभु के शरीर को विदीर्ण कर अत्यंत पीडा पहुंचायी।

फिर सिद्धार्थ राजा और त्रिशलारानी को विकुर्वा ये वे कहने लगे ''हे पुत्र ! तू हमें बचा ले, तेरे सिवा हमें बचानेवाला कोई नहीं है, ये राक्षस हमें बहुत पीडा दे रहे हैं। हमें उनसे किसी भी तरह छुडा ले। नहीं तो ये हमारे प्राण ले लेंगे। '' आदि कहकर प्रभु को पीडा पहुंचायी। पश्चात् विकुर्वे हुई सेना के छावणी के आदमियों ने प्रभु के पैरों पर चुल्हा जलाकर उस पर बर्तन रखकर चावल आदि पकाने लगे और प्रभु को

पीडा पहुंचायी । फिर विकुर्वे हुए चांडालो ने तीक्ष्ण चोंचवाले पक्षियों के पिंजडे प्रभु के जंघा, बाहु, कान आदि अवयवों में लटकाये । पिंजडो के पक्षियों ने चोंच और नखों से प्रहार कर जर्जरित किया और पीडा दी । फिर पवन विकुर्वाया जिससे प्रभु को उछाल उछालकर नीचे पटककर पीडा दी । विकुर्वे हुए चक्रवात से प्रभु को चक्र की तरह घुमाकर पीडा दी । जिसके गिरने से मेरुपर्वत की चूलिका का भी चुर्ण हो जाय ऐसे एक हजार भार प्रमाणवाले चक्र को बनाकर प्रभु पर उसका जोर से प्रहार किया, उसके प्रभाव से प्रभु घूटने तक जमीन में धंस गये ।

फिर सुबह का आभास कर कहने लगा ''हे देवार्य ! कब तक ध्यान में रहोगे ? कबसे प्रभात हो गयी है ।'' आदि कहा पर प्रभुने ज्ञान से जाना की और रात्री शेष है, अतः स्थिर ही रहे । अंत में उस संगमदेव ने देवों की ऋद्धि बनाकर कहा की - ''हे महर्षि ! मै प्रसन्न हुआ हूं तुम्हारे इस तपध्यान से अतः माँग लो, कहो तो स्वर्ग दूं और कहो तो मोक्ष दे दुं ।'' ऐसा कहने सुननेपर भी प्रभु कुछ बोले नहीं । अंतःसंगमदेव ने विकुर्वी हुई देवांगनाओं ने अनुकुल उपसर्ग किये परंतु प्रभु उपसर्गो से जरा भी चलायमान नहीं हुए ।

संगमदेव ने एक ही रात में बीस उपसर्ग कर प्रभु को हेरान परेशान कर दिया फिर भी करुणावंत प्रभुने संगमदेव पर करुणा की ही वर्षा की । यहाँ पर कवि की कल्पाना ऐसी हुई कि जिन में जगत का नाश करने की और उद्धार करने की शक्ति है, ऐसे बलवाले वीर प्रभु ने अकारण हैरान करने वाले संगमदेव पर क्रोध न करते हुए कृपा ही बरसायी । तो फिर पास रहनेपर हमारी किंमत क्या ऐसा सोचकर क्रोध प्रभु से दूर चला गया, ऐसी कविने कल्पना की है ।

दिन चढने पर प्रभु ने वहाँ से विदा ली, और विहार किया । संगमदेव की दुष्टता गई नहीं थी, अतः प्रभु जहाँ जहाँ गये वहां वहां आहार को अनेषणीय बनाने लगा । और भी अन्य अनेक तरह के उपसर्ग करना उसने चालू रखा । इस देव के उपसर्गो से और प्रयत्नो से प्रभु के छः मास के उपवास हो गये परंतु प्रभु ने अनेषणीय आहार वहोरा नहीं छः मास के पश्चात प्रभु व्रज गांव के गोकुल में गोचरी के लिये गये । वहाँ भी संगमदेव ने अनेषणीय किया हुआ आहार होने से प्रभु आहार लिये बिना ही लौटे और गांव के बाहर आकर कायोत्सर्ग में ध्यानलीन हो गये । संगमदेव इस प्रकारसे अतिउग्र कष्ट देने पर भी प्रभु अस्खलित विशुद्ध परिणामवाले रहे यह जान कर खिसियाना होकर प्रभु को वंदन कर कहने लगा की ''हे प्रभु ! सौधर्मेन्द्र ने देवसभा में आपके सत्व की जो प्रशंसा की थी वह योग्य ही थी । मैने आपके बहुत अपराध किये है, मुझे क्षमा करो।'' ऐसा कहते हुए इंद्र का मन में भय रखता हुआ देवलोक गया ।

प्रभु वहाँ से आलंभिका नगरी आये । वहाँ हरिकान्त नामक भवनपति का इंद्र प्रभु को सुखशाता पूछने आया । प्रभु वहाँ से कौशांबी नगरी में पहुंचे वहां सूर्य और चंद्र प्रभु को वंदन करने आये । वहां से प्रभु वाराणसी आये । वहां सौधर्मेन्द्र ने आकर प्रणाम किया । प्रभु राजगृही पधारे वहाँ इशानेन्द्र ने आकर वंदन किया । वहाँ से प्रभु मिथिला आये । वहां जनक राजाने एंव धरणेंद्र नागराजा ने आकर वंदन किया । वहां से वैशाली नगरी आकर ग्यारहवां चातुर्मास किया । वहाँ भूत नामक भवनपित के देव ने आकर वंदन किया । वहां से प्रभु सुसुमारपूर आये । उस

समय चमरेंद्र का उत्पात हुआ । प्रभु का शरण लेने के कारण सौधर्मेन्द्र ने चमरेंद्र को छोड दिया । वहाँ प्रभु को सौदर्मेन्द्र और चमरेंद्र ने वंदन किया ।

वहां से प्रभु कौशांबी आये । वहां शतानिक राजा था, जिसकी मृगावती रानी थी । वहां प्रभुने ऐसा अभिग्रह किया की द्रव्य से सूप के कोने में रहे हुए उडद के बाकुले, क्षेत्र से, वहोराने वाले का एक पैर दहलीज के अंदर और एक पैर बहार हो, कालसे सब भिक्षाचर भिक्षा लेकर निवृत्त हुए हो तब भावसे, वहोराने वाली राजकुमारी हो, दासीपने को प्राप्त हो, उसका मस्तक मुंडित हो, पैरों में बेडी हो, रुदन करती हो और अठ्ठम तपवाली हो, ऐसी कुंआरी स्त्री वहोरावे तभी वहोरावुं अन्यथा उपवासी रहेंगे ।पौष वदी एकम को प्रभु कौशांबी में आये, उसी दिन प्रभु ने ऐसा उग्र अभिग्रह लिया । फिर भिक्षा समय बीत जाने पर ही प्रभु हररोज भिक्षार्थ नगरी में जाते । राजा,प्रधान सबने बहुत बहुत उपाय किये परंतु अभिग्रह पूरा होता नहीं था,अतः प्रभु हररोज भिक्षा लिये बिना वापिस लौटते ।

इस समय शतानिक राजा ने चंपानगरी के राजा पर आक्रमण कर दिया । युध्द हुआ । उसमें चंपानगरी का राजा दधिवाहन पराजित हुआ । दधिवाहन की रानी धारिणी और कुमारी वसुमति को कोई सैनिक पकडकर ले गया । उस सैनिक ने धारिणी रानी को पत्नी बनाने की बात कही तब रानी ने जीभ काटकर मृत्यु स्वीकारा । इस कारण सैनिक वसुमति को अपनी पुत्री कहकर आश्वासन देता है और कौशांबी के बजार में बेचने ले जाता है । वहाँ आये हुए धनावह सेठ ने वसुमति को मोल देकर लिया । घर लाकर अपनी पुत्री की तरह रखा । वसुमती की चंदन जैसी शीतल वाणी थी अतः धनावह सेठ ने उसका चंदनबाला नाम रखा ।

एक बार दोपहर सेठ खाना खाने आये तब अन्य कोई दासी हाजिर न होने से चंदनबाला ने सेठ के पैर धो दिये तब चंदनबाला की चोटी जो जमीन पर लटक रही थी उसे सेठ ने उंचा किया । यह दृश्य देखकर मूलासेठानी को लगा की निश्चित ही सेठ युवान रुपवती बाला को पत्नी बनायेंगे, फिर मुझपर स्नेह नहीं रखेंगे । एक दिन किसी काम के लिये सेठ बाहर गये तब मूलासेठानी ने हजाम को बुलाकर चंदनबाला का सिर मुंडित करवाया, उसके दोनो पैरों में बेडी डाल दी, मार मारकर एक अंधेरे कक्ष में डालकर ताला लगा दिया । और वह खुद मैके चली गयी ।

बहार से आये हुए सेठ को चौथे दिन ज्ञात हुआ कि चंदनबाला की ऐसी दशा हुई है । सेठ ने तुर्त ही चंदनबाला को बहार निकाल कर दहलीज पर बैठाया सूप के कोने में दुसरा कुछ न होने से पकाये हुए उडद के बाकुले सुप में रखकर चंदनबाला को देकर वह खुद लुहार को लाने चला गया । चंदनबाला के तीन उपवास हो गये थे । अतः उसने सोचा की किसी अतिथि को देकर फिर ही मैं बाकुले वापरुं । इस वक्त श्री वीर भगवान खुद भिक्षार्थ वहाँ आये । प्रभु को आते देख चंदनबाला हर्षित हुई। और वह प्रभु को विनंती कर वहोराने तैयार हुई । पर अपना अभिग्रह पूरा नहीं हुआ है, ऐसा जानकर प्रभु वापिस लौटे । अतः चंदनबाला अत्यंत व्यथित हई । और उसकी आँखो से आँसू बहने लगे, वह रोने लगी । यह देख वीर प्रभु ने अभिग्रह पूरा हुआ जान वापिस आकर चंदनबाला के हाथों से उडद के बाकुले वहोराये । तब देवों ने प्रसन्न होकर पंचदिव्य

प्रकटाये। इंद्र वहां पर आये, देव आनंद से नृत्य करने लगे।

चंदनबाला के सिर पर सुंदर बाल आ गये। पैरों में बेडी की जगह सुंदर नुपूर आ गये। देवदुंदुभि नाद सुनकर महाराजा शतानिक और महारानी मृगावती वहाँ आये। मृगावती चंदनबाला की मौसी थी, चंदना को पहचान कर वह उनसे मिली। फिर शतानिक राजा सुवर्णवृष्टि का सुवर्ण उठाने तत्पर हुए तब इंद्रने चंदनबाला के कहने पर धनावह सेठ को लेने दिया। और कहा की चंदनबाला प्रभु की प्रथम शिष्या होगी। शतानिक राजा और मृगावती रानी चंदनबाला को महल में आदरपूर्वक अपने साथ ले गये। पाँच मास पच्चीस दिन के उपवास के बाद उडद के बाकुले से वीर प्रभु का पारणा हुआ।

प्रभु वहाँ से जृंभिका गांव आये। वहां पर सौधर्मेन्द्र ने आकर वंदन किया, भक्ति से नृत्य किया और प्रभुसे कहा की ''अब आप को अल्प दिनों में ही केवलज्ञान प्राप्त होगा।''

वहां से प्रभु मेंढिक गांव आये। वहां चमरेंद्र ने आकर प्रभु को वंदन किया। प्रभु षण्मानी गांव के बाहर प्रतिमा ध्यान में खडे रहे। तब एक गोपाल अपने बैलों को प्रभु के पास रखकर गांवमें चला गया। अपना काम निपटाकर वहाँ आया, वहां बैलो को न देखकर कहने लगा '' हे देवार्य ! मेरे बैल कहां है ?'' ऐसा प्रभु को पूछने लगा। प्रभु मौनपने अपने ध्यान में मग्न रहे। अत्यंत क्रोधित हुए गोपला ने प्रभु के दोनों कान में लकडी के दो खीले इस तरह हथोडे से ठोक दिया, की कान में गये हुए दोनो खीले एक दुसरे से जुड जाय (एक दुसरे को स्पर्श करे) ओर कान की बहार रहे हुए लकडी के खीलों को उसने काट डाला। जिससे खीले को पकडकर कोई खींच न निकाले। ऐसा घोर उपसर्ग भी प्रभु खूब समतापूर्वक सहन करने लगे। कान में खीले ठोके जाये ऐसा कर्म प्रभु ने त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में शय्या पालक के कान में तपा हुआ सीसा (रस) डालकर बांधा था। वह कर्म महावीर के भव में उदय में आया। वही शय्यापालक बहुत सारे भवो में भ्रमण कर यह गोपाल हुआ था।

प्रभु वहां से मध्यम अपापा नगरी में आये। वहां पर सिद्धार्थ वणिक की घर भिक्षार्थ पहुंचे। वहां बैठे हुए उस वणिक के मित्र खरक वैद्य ने प्रभु को देखा। वैद्य को लगा की प्रभु के शरीर में कहीं शल्य है। अतः वैद्य सिद्धार्थ वणिक को साथ लेकर जहां प्रभु काउसग्ग ध्यान में खडे थे वहां पहुंचा और प्रभु के शरीर की जांच की, कान में शल्य देख संडासीओं से प्रभु के कान में से दोनो खीले खींच निकाले। उस समय प्रभु के मुख से वेदना के कारण ऐसी चीख निकल गयी जिससे संपूर्ण उद्यान में खलबली मच गई। उस स्थान पर लोगों ने देवमंदीर बांधा।

प्रभु को संरोहिणी नामक औषधी से अच्छा कर खरक वैद्य और सिध्दार्थ वणिक अपने स्थान पहुंचे। प्रभु के उपसर्गों की शुरुवात और समाप्ति गोपाल (गोवालिया) से ही हुई। प्रभु को हुए उपसर्गो में कटपूतना व्यंतरी ने किया हुआ शीतोपसर्ग जघन्यों में उत्कृष्ट था। संगम देव ने प्रभु के सिर पर मारा हुआ कालचक्र का उपसर्ग मध्यम में उत्कृष्ट जानना और कान में से खीले निकालने का उपसर्ग उत्कृष्ट में उत्कृष्ट जानना। ये सब उपसर्ग श्री वीरप्रभु ने शान्ति,समता और निश्चलता पूर्वक सम्यक् रीति से सहन किये।

इस तरह उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करते हुए, कर्म शत्रुओं का नाश करने में उद्यमवंत होते हुए भी प्रभु महावीर महान आत्मगुणों में लीन रहे। संपूर्ण गुणसमुह से आत्मा को भावित करते करते बारह साल बिताते है। इस छद्मस्थ काल के साढे बारह सालों में श्री वीर प्रभुने जो तप किये वह बताते है -

तप का नाम	तप के दिन	पारणे के दिन	कुल दिन
एक छःमासी	१८०	१	१८१
एक छःमासी पाँच दिन कम	१७५	१	१७६
नौ चौमासी	१०८०	९	१०८९
दौ तीन मासी	१८०	२	१८२
दो ढ़ाइ मासी	१५०	२	१५२
छः दो मासी	३६०	६	३६६
दो देड मासी	९०	२	९२
बारह मासखमण	३६०	१२	३७२
बहत्तर पक्षक्षमण (१५ दिन)	१०८०	७२	११५२
बारह अट्ठम (तेले)	३६	१२	४८
दो सौ उन्नतीस छट्ठ (बेले)	४५८	२२९	६८७
एक भद्र प्रतिमा	२	-	२
एक महाभद्र प्रतिमा	४	-	४
एक सर्वतोभद्र प्रतिमा	१०	१	११

तप और पारणे के सब दिन ४५१४ इस तरह तप के दिनों के साढे ग्यारह साल और पच्चीस दिन हुए । पारणे के सब दिन मिलकर तीनसौ पचास याने एक वर्ष में ग्यारह दिन कम । तप और पारणे के मिलाकर साढे बारह वर्ष और ग्यारह दिन हुए ।

प्रभु ने जो जो तप किये वे चौविहारी ही थे । बेले से कम तप किया नहीं उसी तरह लगातार दो दिन कभी आहार लिया नहीं । इस तरह तेरहवें वर्ष के मध्य में वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जृंभिक गांव के बहार ऋजुवालिका नामक नदी के किनारे शालवृक्ष के नीचे गोदोहिक आसन से आतापता लेते हुए श्री वीरप्रभु को चोविहार बेले तप के होते हुए शुक्लध्यान के प्रथम दो भेद का ध्यान करते हुए अनंत वस्तु के विषयों को प्रकट करनेवाला एवं अनुपमेय ऐसा सब रीत से परिपूर्ण, उत्तमोत्तम ऐसा **''कैवल्यज्ञान''** **एवं** **''कैवल्यदर्शन''** उत्पन्न हुआ ।